भारत के महान अमर क्रांतिकारी

# चन्द्रशेखर आज़ाद

डॉ० भवान सिंह राणा

भारतीय ग्रन्थ निकेतन
२०११, कूचा चेलान, दरियागंज,
नई दिल्ली-११०००२

# दो शब्द

भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति तथा इस राष्ट्र के निर्माण में क्रांतिकारियों का अवदान अन्य आंदोलनों की तुलना में किसी भी प्रकार कम नहीं रहा है। वास्तविकता तो यह है कि भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन का इतिहास 1857 की क्रांति से ही प्रारम्भ होता है, किंतु खेद का विषय है कि हमारे इतिहास-लेखकों ने क्रांतिकारियों के इस अवदान का उचित मूल्यांकन नहीं किया है।

चन्द्रशेखर आज़ाद भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन की एक निरुपम विभूति हैं। भारत की स्वतन्त्रता के लिए उनका अनन्य देशप्रेम, अदम्य साहस, प्रशंसनीय चरित्रबल आदि इस राष्ट्र के स्वतंत्रता-प्रहरियों को सदा-सर्वदा एक आदर्श प्रेरणा देते रहेंगे। एक अति निर्धन परिवार में जन्म लेकर भी उन्होंने राष्ट्र-प्रेम का जो आदर्श प्रस्तुत किया है,वह प्रशंसनीय ही नहीं, स्तुत्य भी है। आज़ाद वस्तुत: देश प्रेम, त्याग, आत्मबलिदान आदि सद्गुणों के प्रतीक हैं।

भारत के महापुरुषों में आत्मप्रशंसा से दूर रहने की परम्परा रही है। इसलिए आज़ाद भी अपने विषय में अपने साथियों तक को कभी कुछ नहीं बताते थे। एक बार भगतसिंह द्वारा उनके घर-परिवार आदि के विषय में पूछे जाने पर उन्होंने कहा था—"दल का सम्बन्ध मुझसे है; मेरे घरवालों से नहीं। मैं नहीं चाहता कि मेरी जीवनी लिखी जाए।" इसके साथ ही क्रांतिकारियों के आंदोलन गुप्त आंदोलन थे। अत: अन्य आंदोलनों के समान इनका निर्विवाद इतिहास मिलना असम्भव-सा लगता है। यही [illegible]रण है कि आज़ाद के जीवन की घटनाओं का विभिन्न पुस्तकों में भिन्न-[illegible] होता है।

इस पुस्तक में आजाद के जीवन की सभी घटनाओं के विषय में व
ामग्री को क्रमबद्ध रूप में पिरोने की अल्प चेष्टा की गई है। जिन प
पर विद्वानों में विवाद है, उनका उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है
प्रयास कितना सफल रहा, इसका निर्णय तो सुधी पाठक ही करेंगे।

यह पुस्तक वीरश्रेष्ठ आजाद के जीवन की ऐतिहासिक घटना
संकलन मात्र है, अतः इसके विषय में मौलिकता का दावा करना
वंचना ही कही जाएगी। इसके लेखन में श्री मन्मथनाथ गुप्त, य
वैशम्पायन, श्री वीरेन्द्र, व्यथित हृदय, यशपाल शर्मा, शिव वर्मा,
रमैया आदि विद्वान् लेखकों की पुस्तकों से सहायता ली गई है, अ
सबके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

# अनुक्रमणिका

## प्रथम अध्याय

# प्रारम्भिक जीवन

इस राष्ट्र के निर्माण में; इसकी स्वतन्त्रता के लिए न जाने कितने वीरों ने अपने प्राणों का बलिदान किया, उनमें से अनेक वीरों के नाम भी ज्ञात नहीं हैं। जिन क्रान्तिकारी वीरों के नाम ज्ञात भी हैं, उन्हें भी आज हम भूलें जैसे गये हैं, उनके नाम केवल इतिहास की पुस्तकों तक ही सीमित रह गये हैं। भारतीय स्वतन्त्रता का इतिहास सन् 1857 की क्रान्ति से ही प्रारम्भ होता है। यद्यपि स्वतन्त्रता के इस पहले संग्राम को अंग्रेजों ने असफल कर दिया था, फिर भी दासता की जंजीरों में बंधे भारतीयों को इससे जो प्रेरणा मिली, उसी प्रेरणा ने उन्हें स्वतन्त्रता के लिए लगातार प्रयत्न करने की शिक्षा दी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद भले ही इस दल ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए अहिंसक आधार पर स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ी, आज सारा श्रेय कांग्रेस को ही दिया जाता है। किन्तु कांग्रेस के साथ ही भारत के क्रान्तिकारी सपूतों ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध समानान्तर रूप में युद्ध किया। अंग्रेज सरकार के लिए ये क्रान्तिकारी एक चुनौती बन गये थे। हिंसा के माध्यम से विदेशी शासकों को देश से निकाल बाहर करना और मातृभूमि को स्वतन्त्र कराना ही इनका लक्ष्य था।

भयंकर विपत्तियों का सामना करते हुए, सभी सुख-सुविधाओं को त्यागकर, अपने प्राणों की परवाह न करके भारतीय वीर क्रान्तिकारी अपने पावन कार्य को आगे बढ़ाते रहे। इन्हीं वीरों में एक नाम वीर शिरोमणि अमर शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद का भी है, जिन्होंने मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए अपना जीवन भी बलिदान कर दिया। यहाँ इसी वीर का जीवन-चरित्र प्रस्तुत किया जा रहा है।

## आज़ाद की वंश-परम्परा एवं उनका मूल स्थान :

चन्द्रशेखर आज़ाद के पूर्वजो के मूल स्थान, स्वयं आज़ाद के निवास स्थान आदि के विषय में अनेक भ्रान्तियाँ हैं। आज़ाद के पितामह मूलतः में कानपुर के निवासी थे, जो बाद में गाँव बदरका जिला उन्नाव में बस गये थे। इसीलिए आज़ाद के पिता पण्डित सीताराम तिवारी का बचपन यहीं व्यतीत हुआ था और यही उनकी युवावस्था का प्रारम्भिक काल भी बीता। पण्डित सीताराम-तिवारी के तीन विवाह हुए। उनकी पहली पत्नी जिला उन्नाव के ही मौरावा की थी। अपनी इस पत्नी से उनके एक पुत्र भी हुआ था, जो अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गया था। पण्डित तिवारी का अपनी इस पत्नी के साथ अधिक दिनों तक निर्वाह न हो सका, अत: उन्होंने इसे छोड़ दिया, जो अपने शेष जीवन में अपने मायके में ही रही। इसके बाद उन्होने दूसरा विवाह किया। उनकी दूसरी पत्नी उन्नाव के ही सिकन्दरापुर गाँव की थी। उनकी यह द्वितीय पत्नी भी उनके जीवन मे अधिक दिनों तक न रह सकीं; वह शीघ्र ही दिवंगत हो गईं। इसके बाद उन्होंने तीसरा विवाह जगरानी देवी से किया। जगरानी देवी गाँव चन्द्रमन खेड़ा, उन्नाव की थी। बदरका, उन्नाव में ही तिवारी दम्पत्ति को एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। इस पुत्र का नाम उन्होंने सुखदेव रखा।

## आज़ाद का जन्म एवं बाल्यकाल :

इस पुत्र के जन्म के बाद पण्डित सीताराम आजीविका की खोज में मध्यभारत की एक रियासत अलीराजपुर चले गए। बाद में उन्होंने अपनी पत्नी जगरानी देवी तथा पुत्र सुखदेव को भी वहीं बुला लिया। अलीराजपुर के गाँव भाभरा को उन्होंने अपना निवास स्थान बनाया। यहीं सुखदेव के जन्म के 5-6 वर्ष बाद सन् 1905 में जगरानी देवी ने एक अन्य पुत्र को जन्म दिया। यही बालक आगे चलकर चन्द्रशेखर आज़ाद के नाम से विख्यात हुआ। इस नवजात बालक को देखकर बालक के माता-पिता को बड़ी निराशा हुई, क्योंकि बालक अत्यन्त कमजोर था तथा जन्म के समय उसका भार भी सामान्य बच्चों से बहुत कम था। इससे पूर्व तिवारी

दम्पत्ति की कुछ सन्तानें मृत्यु को प्राप्त हो गई थीं। अत: माँ-बाप इस शिशु के स्वास्थ्य से अति चिन्तित रहते थे। दुर्बल होने पर भी बालक बड़ा सुन्दर था; उसका मुख चन्द्रमा के समान गोल था।

सीताराम तिवारी की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। पहले उन्होंने वन विभाग में कोई मामूली-सी नौकरी की। यह काम करते समय एक बार कुछ आदिवासियों ने उन्हें मार-पीटकर उनके रुपये-पैसे, कपड़े जो कुछ पास था, सब छीन लिया। अतः उन्होंने यह नौकरी छोड़ दी। इसके बाद उन्होंने गाय-भैंस पशु पाले और उनका दूध बेचकर परिवार का निर्वाह करने लगे। सन् 1912 के भयंकर सूखे से उनके बहुत-से पशु मर गये, अतः उन्हें यह व्यवसाय भी छोड़ना पड़ा। इसके बाद उन्होंने एक सरकारी बाग में नौकरी की। उनकी आर्थिक स्थिति सदा ही दयनीय बनी रही, किन्तु फिर भी उन्होंने ईमानदारी का दामन कभी नहीं छोड़ा। इस बाग से कभी कोई छोटी-से छोटी वस्तु भी वह अपने घर नहीं लाये। श्री विश्वनाथ वैशम्पायन ने अपनी पुस्तक चन्द्रशेखर आज़ाद में इस विषय में पं० सीताराम तिवारी का निम्न कथन उद्धृत किया है—

"सरकारी बाग की नौकरी में हमने कोई बेईमानी नहीं की, इस बाग से कभी आम तो क्या एक भाटा (बैंगन) भी हमने तहसीलदार तक को मुफ्त में नहीं भेजा। फिर घरवालों को तो मैंने कभी उन्हें छूने भी नहीं दिया। अगर ये (आज़ाद की माता की ओर संकेत कर) कभी कोई फल-फूल ले जाती, तो मैं इनका सिर काट देता।···हमने कभी बेईमानी से एक पैसा भी नहीं कमाया और पराया धन हराम समझा।"

निर्धनता के कारण पण्डित सीताराम तिवारी आज़ाद के लिए दूध आदि उचित आहार का प्रबन्ध भी नहीं कर सकते थे। उस क्षेत्र में एक विश्वास प्रचलित है कि लोग अपने बच्चों को बाघ का मांस खिलाते हैं, ताकि बच्चा स्वस्थ, बलवान तथा वीर बने। इसीलिए आज़ाद को भी बाघ का मांस खिलाया गया। सम्भवतः यह मांस सुखाकर खिलाया जाता है, जिसे लोग अपने पास रखते हैं। इसके बाद अपने पूरे जीवन में चन्द्रशेखर आज़ाद एक शाकाहारी व्यक्ति थे। यद्यपि वह शिकार करने के शौकीन थे, तथापि वह मांस नहीं खाते थे; हाँ, बाद में भगतसिंह के प्रभाव में आकर

वे अण्डा खाने लगे थे।

दुबला-पतला बालक चन्द्रशेखर आज़ाद धीरे-धीरे चन्द्रमा की कलाओं के समान बढने लगा। उसका शरीर स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट हो गया। इससे माता-पिता को एक नई आशा जागी। एक नये हर्ष का संचार हुआ। चन्द्रशेखर अपने बाल्यकाल से ही एक हठी स्वभाव के व्यक्ति थे। हठ के साथ ही निर्भीकता एवं साहस भी उनके स्वभाव के अनन्य गुण थे। उनके मन में जो बात आ जाती थी, उन्हें वह करके छोड़ते थे। इस सम्बन्ध में उनके बचपन की एक घटना का वर्णन विभिन्न पुस्तकों में किया गया है। एक बार वह दीपावली के अवसर पर रोशनी वाली दियासलाई से खेल रहे थे। तभी बालक चन्द्रशेखर के मन मे यकायक एक विचार आया कि जब एक तीली से इतनी रोशनी होती है, तो सारी तीलियों को एक साथ जलाने से कितनी अधिक रोशनी होगी! उन्होने अपने मन की यह बात साथियों को बताई, साथी भी इसका परिणाम जानने के लिए बड़े उत्सुक हुए, परन्तु सारी तीलियाँ एक साथ जलाने का साहस किसी साथी को नहीं हुआ; सभी को इतनी तीलियों के एक साथ जलने पर हाथ जलने का डर था। बस फिर क्या था चन्द्रशेखर आगे आ गए; उन्होने स्वयं इस काम को करना स्वीकार किया। सारी तीलियाँ एक साथ जला डाली। तमाशा तो हुआ, किन्तु उनका हाथ भी जल गया। आज़ाद को इसकी कोई परवाह नहीं थी। जब साथियों ने बताया कि उनका हाथ जल गया, तभी उनका ध्यान इस ओर गया। साथियों ने उस पर दवा लगाने के लिए कहा, किन्तु आज़ाद का कहना था कि जल गया है, तो अपने आप ठीक हो जाएगा। सभी बच्चों को इससे बड़ी हैरानी हुई, वे आज़ाद का मुँह ताकते रह गए। इस प्रकार के साहसिक कार्य करना बचपन से ही उनका स्वभाव था, जो सम्भवतः उनके भावी जीवन का पूर्व संकेत था।

भाई-बहिन :

आज़ाद से पूर्व उनकी माँ के चार पुत्र हुए थे, जिनमें से सुखदेव ही जीवित रहे, शेष तीन आज़ाद के जन्म से पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो गए थे। जब आज़ाद बनारस में विद्यार्थी थे, उस समय उनके बड़े भाई सुखदेव

अपने गाँव के पास ही कहीं पोस्टमैन बन गये थे। इस पद पर उन्होंने लगभग दो वर्ष तक काम किया। बाद में उन्हें निमोनिया हो गया और उन्होंने पद से त्यागपत्र दे दिया। चिकित्सा की गई, किन्तु कोई परिणाम न निकला तथा सन् 1925 में उनकी मृत्यु हो गई। इसके बाद वह अपने माता-पिता की अकेली सन्तान शेष रह गये। सम्भवतः उनकी कोई सगी बहिन नहीं थी। भाई की मृत्यु के समय आज़ाद लापता थे।

## शिक्षा-दीक्षा :

घोर गरीबी के कारण पण्डित सीताराम तिवारी अपने पुत्रों को शिक्षा देने में समर्थ नहीं थे। गाँव की ही पाठशाला में उनकी शिक्षा आरम्भ हुई। श्री मन्मथनाथ गुप्त ने लिखा है कि श्री मनोहरलाल त्रिवेदी नामक एक सज्जन जो किसी सरकारी पद पर कार्यरत थे, उन दिनों सुखदेव तथा चन्द्रशेखर आज़ाद को उनके घर पर भी पढ़ाते थे। उस समय सुखदेव की अवस्था तेरह-चौदह वर्ष तथा आज़ाद की आठ वर्ष थी। श्री त्रिवेदी के कथन को उद्धृत करते हुए उन्होंने लिखा है—

"जब सुखदेव की उम्र तेरह-चौदह और चन्द्रशेखर की सात-आठ वर्ष की थी, तब मैं इन्हें पढ़ाया करता था। आज़ाद बचपन से ही न्याय-प्रिय और उच्च विचारों वाले थे। एक बार मैं पढ़ा रहा था, तो जान-बूझकर मैंने एक शब्द गलत बोल दिया। इस पर आज़ाद ने वह बेंत, जिसे मैं उनको पढ़ाने में डराने और धमकाने को अपने पास रखता था, उठाया और मुझे दो बेंत मार दिये। यह देख तिवारी जी दौड़े और उन्होंने आज़ाद को पीटना चाहा, लेकिन मैंने उन्हें रोक दिया। पूछने पर आज़ाद का उत्तर था—"हमारी गलती पर मुझे और भाई को ये मारते हैं, तो इनकी गलती पर मैंने इन्हें मार दिया।"

इसके पश्चात् त्रिवेदी महोदय का स्थानान्तरण नागपुर तहसील हो गया, तब भी आज़ाद के घर उनका आना-जाना बना रहा। चार-पाँच वर्ष बाद उनका स्थानान्तरण पुनः भाबरा के पास ही खट्टाली गाँव में हो गया, तब त्रिवेदी जी ने आज़ाद को अपने ही पास रखकर पढ़ाया, क्योंकि सीताराम तिवारी की स्थिति बच्चे को पढ़ा सकने की नहीं थी। आज़ाद

कुछ समय श्री मनोहरलाल त्रिवेदी के साथ ही रहे। एक वर्ष बाद उन यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। इस अवसर पर वह त्रिवेदी जी के साथ भाभरा गये। लट्टानी में ही उन्होंने चौथी कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की।

इन दिनों अलीराजपुर तहसील में कानपुर के निवासी श्री सीताराम जी अग्निहोत्री तहसीलदार थे और श्री मनोहरलाल त्रिवेदी भी अलीराज पुर ही आ गये थे। एक बार चन्द्रशेखर आजाद उनसे मिलने अलीराजपु गए और उन्हीं के पास रह रहे थे। उन्होंने तहसीलदार से आजाद को नौ नौकरी देने का निवेदन किया। तहसीलदार श्री अग्निहोत्री भी आजाद के परिवार की ईमानदारी तथा आर्थिक स्थिति से परिचित थे। अतः उन्हों आजाद को नौकरी अलीराजपुर तहसील में ही लगा दी। इस स उनकी अवस्था लगभग चौदह वर्ष थी।

लगभग एक वर्ष आजाद ने यहाँ नौकरी की। इन्ही दिनों उनका परिचय एक व्यापारी से हुआ; जो बनारस का रहने वाला था और मोतियों के व्यापार के सिलसिले मे अलीराजपुर आया हुआ था। आजाद उसके साथ भाग गये। उन्होंने नौकरी से त्याग-पत्र भी नहीं दिया। सम्भवतः इस घूमते रहने वाले व्यापारी का जीवन चन्द्रशेखर आजाद को बड़ा पसन्द आया था; वह स्वयं भी किसी बन्धन में बंधना नही चाहते थे। उस व्यक्ति के साथ ही रहना आजाद को नही भाया। बम्बई तक उसके साथ जाने पर उन्होने उसका साथ छोड़ दिया। अब उनके सामने रोजी-रोटी की समस्या थी, अतः वह बम्बई गोदी मे काम करने लगे। नौकरी लग जाने पर भी खाना बनाने की समस्या थी, क्योंकि अभी तक वह एक रूढ़िवादी ब्राह्मण थे। स्वय खाना बनाने की झंझट से मुक्त रहने के लिए पहले तो कुछ दिन तक भुने हुए चनों से गुजारा करना पड़ा, किन्तु बाद मे ढाबों मे खाना आरम्भ कर दिया। शाम को सिनेमा देखने चल देते, ताकि वहाँ से आने पर शीघ्र नीद आ जाए। यह जीवन भी बड़ा ही ऊबाऊ और निम्नस्तरीय था। यहाँ वह बडी कठिनता से सप्ताह मे एक बार नहा पाते थे। यही रहने पर उन्हे सदा एक कुली बनकर रह जाना पड़ता, अत उन्होने अनुभव किया कि उन्हें बम्बई छोड़ देना चाहिए।

सम्भवतः इससे पूर्व वह अपने पिता के सामने बनारस जाकर संस्कृत

मिला। यह साथ उन्हें खूब भाया। वे उन्ही के बीच रहने लगे। भीलों के साथ रहकर उन्होने उनसे धनुष एवं तीर चलाना सीखा। वे तीर से निशाना लगाने में निपुण हो गए।

हर समाज की अपनी कुछ परम्पराएँ होती हैं। इसी प्रकार भीलों के समाज में भी अपराधी को तीर मारकर दण्ड देने की प्रथा है। एक बार दुश्चरित्रता के आरोप में एक भील को तीर मारकर सजा दी जा रही थी। इसी बीच बालक चन्द्रशेखर भी वहाँ पहुँचे। भीलों के नियमों के अनुसार ऐसे समय वहाँ पहुँचने वाला कोई भी व्यक्ति निशाना लगा सकता है। चन्द्रशेखर को भी तीर से निशाना लगाने के लिए कहा गया, उनका निशाना अचूक था। उनके तीर दोषी व्यक्ति की आँखों में लगे और उसकी दोनों आँखें जाती रहीं। उनके चाचाजी को इस सब घटना की सूचना मिली वह चन्द्रशेखर पर नाराज हुए। उन्हें चन्द्रशेखर का भीलों की संगति में रहना उचित नही लगा। उन्होने अपने मन मे विचार किया कि इससे उनका (चन्द्रशेखर का) जीवन बरबाद हो जाएगा। फलतः उन्होने चन्द्रशेखर को पुनः बनारस भेज दिया।

इस बार चन्द्रशेखर ने बुद्धिमानी से काम लिया। वह मन लगाकर पढ़ने लगे, किन्तु संस्कृत व्याकरण को पढ़ाई उन्हें रुचिकर नही लगती थी, क्योंकि इसमें रटने पर जोर दिया जाता है। यहीं उन्होंने संस्कृत भाषा, उसके व्याकरण आदि का साधारण-सा अध्ययन किया। यहाँ वह एक धर्मशाला में रहते थे। भोजन आदि की व्यवस्था भी धर्मशाला की ओर थी।

चन्द्रशेखर बचपन से ही चञ्चल स्वभाव के थे। अधिक समय तक एक ही स्थान पर रहना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। अतः वह कभी-कभी गंगाजी मे उतर जाते और घण्टो तैरते रहते। कभी रामायण, महाभारत या किसी पुराण की कथा मे बैठ जाते तथा कथा सुनते रहते। वीर पुरुषों, देशभक्तों आदि की कहानियाँ सुनना उन्हें बचपन से ही रुचिकर लगता था।

## विद्यार्थी जीवन से राजनीति की ओर:

जब चन्द्रशेखर बनारस में अध्ययन कर रहे थे, उन्हीं दिनो भारतीय

राजनीति में महात्मा गांधी का पदार्पण हो चुका था। इसके साथ ही भारत भर में क्रान्तिकारियों की गतिविधियाँ भी बढ़ने लगी थी। अंग्रेजी सरकार ने भारतीयों का दमन करने के लिए एक समिति बनायी, जिसके अध्यक्ष जस्टिस ए० एस० टी० रौलेट थे तथा इसमें निम्नलिखित चार अन्य सदस्य थे।

1. बेसिल स्कॉट, मुख्य न्यायाधीश, बम्बई उच्च न्यायालय।
2. कुमार स्वामी शास्त्री, न्यायाधीश, मद्रास उच्च न्यायालय।
3. वर्ने लावेट, बोर्ड ऑफ रेवेन्यू, यू० पी० के सदस्य।
4. प्रभातचन्द्र मित्र, अधिवक्ता उच्च न्यायालय कलकत्ता।

इस समिति का गठन करते समय इसके दो उद्देश्य बताये गये थे— भारत में क्रान्तिकारी गतिविधियों के विषय में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना तथा इन्हें दबाने के लिए कानून बनाना।

स्पष्ट है कि इसका उद्देश्य भारतीयों की स्वतन्त्रता की आवाज़ को दबाना था, किन्तु सरकार का तर्क था कि सुधारों के लिए इस समिति का गठन किया गया था। यह समिति 10 दिसम्बर, 1917 को बनी थी। अन्त में इसने दो सौ छब्बीस पृष्ठों की अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। भारतीयों की स्वतन्त्रता एवं उनके अधिकारों को इस रिपोर्ट द्वारा और भी कम कर दिया गया था। इस रिपोर्ट से केवल क्रान्तिकारी आन्दोलनों का ही दमन नहीं होना था, वरन् इसका उद्देश्य राजनीतिक आन्दोलनों को दबाना भी था। इस समिति का नाम 'सिडीशन' कमेटी था, अतः इसके माध्यम से राजनीतिक आन्दोलनों को भी राजद्रोह कहकर दबाया जा सकता था। यह रिपोर्ट पुलिस के विचारों पर आधारित थी। इसमें गर्म दल के कांग्रेसियों लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल आदि को तथा चाफेकर बन्धुओं, खुदीराम बोस आदि क्रान्तिकारियों को एक समान माना गया था। हिंसा तथा अहिंसा आदि का विचार नहीं किया गया था।

## रौलेट कमेटी की सिफारिशें :

इस समिति ने पुलिस को विस्तृत अधिकार प्रदान कर दिये थे। पुलिस जब और जिसे चाहे नजरबन्द कर सकती थी, गिरफ्तार कर सकती

थी, मजिस्ट्रेट जमानत मांग सकती थी। इस प्रकार इस समिति की सिफारिशों से जहाँ एक ओर पुलिस को तानाशाही अधिकार प्राप्त हो जाते थे, वहीं दूसरी ओर इनसे न्यायालयों की कार्यवाहियाँ भी प्रभावित होती थीं। इसमें ऐसी सिफारिशें भी थीं, जिनसे अभियुक्तों को बिना पर्याप्त प्रमाणों के शीघ्रातिशीघ्र दण्डित किया जा सके। इन सिफारिशों को सरकार ने स्वीकार कर लिया तथा यही सिफारिशें रौलेट बिल कही गई।

## रौलेट एक्ट का देशव्यापी विरोध :

1919 के आरम्भ में इस रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही सारे देश में असन्तोष की लहर फैल गई। कांग्रेस ने इसे भारतीयों के मौलिक अधिकारों पर कुठाराघात कहकर इसका विरोध किया। महात्मा गांधी ने इस बिल के विरोध में सारे देश में सत्याग्रह करने की चेतावनी दी। और 30 मार्च, 1919 को देशव्यापी हड़ताल का आह्वान किया। यद्यपि यह तिथि फिर बदलकर 6 अप्रैल कर दी गई, किन्तु सूचना न मिल पाने के कारण दिल्ली में 30 मार्च को ही सफल हड़ताल हुई। एक विशाल जुलूस निकाला गया, जिसका नेतृत्व आर्य समाज के प्रधान स्वामी श्रद्धानन्द ने किया। गोरे सिपाहियों ने स्वामीजी को गोली मार देने की धमकी दी, परन्तु स्वामीजी इससे बिलकुल भी विचलित नहीं हुए। वह आगे बढ़ते गए। दिल्ली रेलवे स्टेशन पर पुलिस ने गोली चलाई, जिसमें पाँच व्यक्तियों की मृत्यु हुई तथा बीस व्यक्ति घायल हुए। देशवासियों का स्वतन्त्रता-प्रेम दासता की जंजीरों को काट डालना चाहता था। सरकार उन्हें कुचल देना चाहती थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर क्या किया जाए?

दिल्ली के इस आन्दोलन में हिन्दू तथा मुसलमानों की एक अभूतपूर्व एकता के दर्शन हुए। दोनों ने एक दूसरे के कन्धे से कन्धा मिलाकर इस आन्दोलन को सफल बनाया। हिंदुओं ने सार्वजनिक रूप में मुसलमानों के हाथों से पानी पिया और 4 अप्रैल, 1919 को स्वामी श्रद्धानन्द ने दिल्ली की शाही जामा मस्जिद की मिम्बर से वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करते हुए अपना भाषण दिया। निःसन्देह यह भारतीय इतिहास की

पूर्ण घटना है; एक उज्ज्वलतम ऐतिहासिक पहलू है।

दिल्ली के साथ ही सारे देश मे इस बिल का विरोध हुआ। सन् 1919 में अमृतसर मे कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला था। इसकी तैयारियाँ डॉक्टर किचलू तथा सत्यपाल कर रहे थे। सरकार ने इन दोनों को गिरफ्तार करके किसी अज्ञात स्थान पर भेज दिया। जनता इसका कारण जानने के लिए मजिस्ट्रेट से मिलने के लिए चल पड़ी, किन्तु पुलिस ने उसे रास्ते मे ही रोक दिया। इसी बीच हिंसक उपद्रव हो गया, जिसमे पाँच गोरे मारे गये। कई मकानों मे आग लगा दी गई। जनता में आक्रोश की कोई सीमा नहीं थी। गुजरांवाला तथा कसूर मे भी हिंसक घटनाएँ हुई। डॉ० सत्यपाल ने गांधीजी को अमृतसर आने के लिए पत्र लिखा था। वह 8 अप्रैल को पंजाब के लिए प्रस्थान कर चुके थे। रास्ते मे ही पलवल नामक स्टेशन पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और बम्बई भेज दिया गया।

रौलेट बिल के विरोध मे पूरे पंजाब मे जुलूस निकाले गये। सड़कों पर तीन-तीन मील लम्बे जुलूस देखे गये। सड़कें प्रदर्शन करने वालों से ठसाठस भरी हुई थी। काले झण्डों का प्रदर्शन किया गया। प्रदर्शनो के साथ ही हड़ताल भी की गई। यह हड़ताल सात दिनों तक चली। पुलिस बलात् दुकान खुलवा देती, किन्तु पुलिस के हटते ही दुकानें फिर बन्द हो जातीं। लाहौर में हड़ताल के दौरान बाजार की गलियों में खाना बनता था। महिलाएँ अपनी इच्छा से इसमे काम करती थीं, ताकि काम करने वाले तथा मजदूरी पर निर्भर रहनेवाली जनता को खाना मिल सके। लोगों ने अपने संकीर्ण स्वार्थों से ऊपर उठकर देश के हित मे आन्दोलन मे भाग लिया। जगह-जगह रौलेट बिल हाय-हाय के नारे लग रहे थे, सम्राट् पन्चम जार्ज के पुतले जलाये जा रहे थे। पुलिस जब चाहती जगह-जगह लाठीचार्ज करती रहती थी। कई जगहो पर पुलिस ने गोलियाँ भी चलाईं। धड़ाधड़ गिरफ्तारियाँ तथा बाजारों मे सरेआम प्रदर्शनकारियों को बेंत लगाना साधारण बात हो गई थी। सरकार हड़ताल समाप्त करने तथा प्रदर्शन रोकने के लिए पोस्टर चिपकाती, किन्तु जनता उन्हें फाड़ डालती।

जलियाँवाला बाग काण्ड :

13 अप्रैल, 1919 को बैसाखी के दिन पंजाब के अमृतसर में ज
वाला बाग में एक सभा हो रही थी। सभा का उद्देश्य रौलेट बि
विरोध करना था, जिसमें लगभग बीस हजार व्यक्ति उपस्थित थे, जि
बालक, युवक, प्रौढ़ तथा वृद्ध सभी अवस्था के स्त्री और पुरुष थे। ज
वाला बाग की चारों ओर दीवारें थीं, केवल एक ओर से एक संकरा द
था, जिसके अन्दर कोई वाहन भी नहीं जा सकता था।

यह सभा शान्तिपूर्वक हो रही थी। हंसराज नामक एक व्यक्ति 
दे रहा था। इतने में जनरल डायर वहाँ आ धमका। उसके साथ
गोरे तथा एक सौ हिन्दुस्तानी सैनिक थे। बाग में एक ओर सैनिकों
खड़ा करके उसने निहत्थी जनता पर गोली चलाने का आदेश दे दि
जनता में भगदड़ मच गई, किन्तु भागने का रास्ता अत्यन्त संकरा 
कई लोग जान बचाने के लिए कुएँ में कूद गये, जिसमें अनेक लोगों की
हो गई। दो-तीन मिनट तक लगातार गोलियाँ चलाकर निरीह ज
के खून की होली खेली गई। हिंसा का नग्न ताण्डव हुआ। इस विषय
श्री मन्मथनाथ गुप्त अपनी पुस्तक 'भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन
इतिहास' में लिखते हैं—

"जनरल डायर ने हण्टर कमीशन के सामने जो बयान दिया, उस
अनुसार उसने पहले लोगों से तितर-बितर होने को कहा, फिर दो-ती
मिनट के अन्दर गोली चलाई। यदि यह बात सच भी मान ली जाए, तो
दो मिनट में बीस हजार आदमी तंग रास्ते से बाहर नहीं निकल सकते थे।
यदि यह भी माना जाए कि जनरल डायर के हुक्म के बावजूद जनता ने उस
से इन्कार किया तो भी यह समझ में नहीं आता कि कौन-सी जरूरत या
विपत्ति आ पड़ी थी कि जिससे इस तरह से एक हजार आदमियों को बात
की बात में भून डाला गया। इस घटना के लिए केवल जनरल डायर के
सिर पर दोष थोपना गलत होगा, क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने योजना
बनाकर यह सारी बातें की थी, ऐसा ही मैं समझता हूँ। बात यह है कि
पंजाब से ही ब्रिटिश साम्राज्यवाद को सबसे अच्छे जवान मिलते थे, इस
लिए स्वाभाविक तौर पर सरकार यह नहीं चाहती थी कि इस प्रान्त में

सी प्रकार बदअमली मचे। इस सम्बन्ध मे सरकार पनपने से पहले नोच
लने वाली नीति बरतना चाहती थी। जनरल डायर तब तक गोली
लाते रहे, जब तक कि उनका सारा जोश ठण्डा न हो गया। और इस
ात को उन्होंने बड़ी अकड़ के साथ कमीशन के सामने कहा। क्यों न कहते,
न्हें किसी प्रकार का डर तो था नहीं।"

इस काण्ड मे कुल सोलह सौ गोलियाँ चली थी। सरकार की रिपोर्ट
: अनुसार इसमें चार सौ व्यक्तियो की मृत्यु हुई तथा लगभग दो हजार
यक्ति घायल हुए। इस प्रकार की घटनाओं मे सरकार की रिपोर्ट प्रायः
लत ही होती है, अतः यह रिपोर्ट भी सही नही थी। बाद में इसकी जाँच
े लिए कांग्रेस ने एक आयोग का गठन किया, जिसकी रिपोर्ट के अनुसार
ृतकों एव घायलो की सख्या सरकारी रिपोर्ट से लगभग दुगुनी थी।

इस काण्ड के बाद भी सरकार की क्रूरता में कमी नही आई। अमृतसर
के लिए पानी एव बिजली की आपूर्ति बन्द कर दी गई। राह चलते लोगो
को बेंतों से पीटा जाता था, उन्हे छाती के बल रेंगकर चलने के लिए विवश
किया जाता था। सैनिक कानून के अन्तर्गत दुकानो मे वस्तुओं के भाव
सैनिको की इच्छा के अनुसार तय किये जाते थे। सैकड़ो लोगो को गिर-
फ्तार करके जेलो मे भेजा गया था।

पंजाब के गवर्नर माइकल ओडायर ने जनरल डायर के इस कार्य की
प्रशंसा की थी। सैनिक शासन के इन अत्याचारो का वर्णन श्री मन्मथनाथ

बेंत लगवाये गए। राह चलने वालो से कुलियों का काम लिया गया हुक्म भी था कि स्कूल के लड़के दिन मे आकर तीन बार ब्रिटिश झ सलामी करें, बच्चों से प्रतिज्ञा कराई गई कि वे कभी कोई अपरा करेंगे तथा उनसे पश्चाताप करवाया गया। लाला हरिकिशन ल चालीस लाख रुपये जब्त कर लिये गए तथा उन्हें काले पानी की सज इन अत्याचारों का कहाँ तक वर्णन किया जाए।"

पंजाब की इन घटनाओं से पूरे भारतवर्ष में एक क्षोभ का वाता उत्पन्न हो गया। चन्द्रशेखर इन सब घटनाओ से अपरिचित नहीं थे समस्त घटनाओ के विषय मे उन्होने समाचार-पत्रों में पढ़ा। देश पर विदेशी अंग्रेजों के इन अत्याचारों से किशोर चन्द्रशेखर का खून लगा। उनके हृदय मे प्रतिशोध की आग धधकने लगी। इस समय अवस्था लगभग चौदह वर्ष थी।

## बेंतों की सजा और चन्द्रशेखर से आज़ाद :

अमृतसर के बाद दूसरे वर्ष 1920 में कांग्रेस का अधिवेशन कल में हुआ। यह एक विशेष अधिवेशन था, जिसमे लाला लाजपतराय स पति बनाये गए। इस अधिवेशन में सरकार के साथ असहयोग का प्र रखा गया। यद्यपि देशबन्धु चितरंजनदास, महामना मदनमोहन मालवी विपिनचन्द्र पाल आदि पुराने नेता इस प्रस्ताव के विरुद्ध थे, फिर भी प्रस्ताव पास हो गया। फिर इसी वर्ष कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन नाग में हुआ, जिसके सभापति विजय राघवाचार्य थे। इस अधिवेशन में भी प्रस्ताव भारी बहुमत से पास हो गया।

1921 के प्रारम्भ में ही महात्मा गांधी के नेतृत्व मे पूरे देश में अस योग आन्दोलन चलाया गया। असहयोग आन्दोलन की यह आँधी अपने वेग के साथ देश-भर मे फैल गई। विदेशी वस्त्रों की होलियां जलाई ग वकीलों ने अदालतों का बहिष्कार कर दिया। विद्यार्थी सरकारी ब सरकार से सहायता लेनेवाले विद्यालयों का बहिष्कार करने लगे। विदेश वस्तुओं की दुकानों पर आन्दोलन करनेवाले धरना देते थे। जगह-जग सभाएँ हुई। जुलूस निकाले गए। [illegible] के साथ हर प्रका

का असहयोग करने का आह्वान करते थे।

पूरे देश की तरह बनारस भी इस आन्दोलन से अछूता नहीं रह सका। अनेक विद्यार्थी इस आन्दोलन में उतर पड़े। उन्होंने अपनी पढ़ाई छोड़ दी। प्राय: सदा ही प्रदर्शन होते, सभाएँ की जातीं तथा नारों से दशों दिशाएँ गूँज उठतीं। असहयोग आन्दोलन में भाग लेने वाली जनता पर पुलिस लाठियाँ बरसाती। चन्द्रशेखर सभाओं में जाते, भाषण सुनते तथा पुलिस के अत्याचारों को देखते। इन सब बातों ने उनके किशोर मन को झकझोरकर रख दिया। पुलिस के अत्याचारों को देखकर उनका मन विद्रोह कर उठता, वह प्रारम्भ से ही स्वतन्त्रता प्रेमी थे। अत अपने-आपको रोक नहीं सके। वे पढ़ाई की ओर से विमुख होकर असहयोग आन्दोलन में उतर पड़े। अभी उनकी अवस्था केवल पन्द्रह वर्ष के लगभग ही थी।

एक दिन कुछ आन्दोलनकर्ता एक विदेशी कपड़े की दुकान पर धरना दे रहे थे। इतने में पुलिस आ गई। पुलिस का एक दारोगा धरना देनेवालों पर डण्डे बरसाने लगा, वह उन्हें बुरी तरह पीट रहा था। चन्द्रशेखर से यह अत्याचार नहीं देखा गया; वह अपने-आप पर संयम न रख सके। पास में ही एक पत्थर पड़ा था। उन्होंने दूर से ही वह पत्थर उस दारोगा के माथे पर दे मारा। निशाना अचूक लगा था; दारोगा का माथा फट गया और वह वहीं पर भूमि पर गिर पड़ा। एक दूसरे सिपाही ने चन्द्रशेखर को ऐसा करते हुए देख लिया था, चन्द्रशेखर भी इस बात को जान गए, अत: वह भीड़ के बीच से स्वयं को पुलिस की नजरों से बचाते हुए भाग खड़े हुए। एक सिपाही ने उन्हें पकड़ने का प्रयत्न किया, परन्तु वह उसकी पकड़ में नहीं आए।

चन्द्रशेखर के माथे पर चन्दन का टीका लगा था। जिस सिपाही ने उन्हें पत्थर मारते हुए देखा था, वह उन्हें पहचान गया था। अत: वह कुछ अन्य सिपाहियों को साथ लेकर उन्हें ढूँढने के लिए निकल पड़ा। जहाँ-जहाँ उनके मिलने की सम्भावना थी, उन सभी धर्मशालाओं, विद्यालयों तथा अन्य स्थानों पर खोज [illegible] अन्त में पुलिसवाले उस धर्मशाला में भी पहुँच गए, जहाँ [illegible] रहे थे। पुलिस का सिपाही कमरे में घुस गया। वहाँ स[illegible] [illegible]ला लाजपतराय, महात्मा गांधी राष्ट्रीय

विद्यार्थी निर्भीक खड़े थे। आज़ाद से पहलेवाले लड़के से मजिस्ट्रेट ने पूछा, "तुम्हारा नाम ?"

"नवम्बर।" लड़के ने उत्तर दिया।

"तुम्हारे बाप का नाम ?"

"दिगम्बर।"

इन उत्तरों को मजिस्ट्रेट ने अपने लिए अपमानजनक समझा। इसके बाद उसने चन्द्रशेखर आज़ाद से पूछा, "तुम्हारा नाम

"आज़ाद।" चन्द्रशेखर बोले।

"पिता का नाम ?"

"स्वाधीन।"

"तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"जेल में।"

इस प्रकार के उत्तरों से मजिस्ट्रेट तिलमिलाकर रह गया। बड़े-बड़े अपराधी उसके सामने उत्तर देने का साहस भी नहीं कर पाते थे। अत: उसने क्रोध में आकर आज़ाद को पन्द्रह बेंतों की कठोर सजा दी। बेंतों की सजा वास्तव में कठोर समझी जाती थी। इसे सुनकर ही अभियुक्त काँप उठते थे, बेंतों की मार से चमड़ी उधड़ जाती थी, परन्तु चन्द्रशेखर ने इस दण्ड की कोई परवाह नहीं की।

उनका प्रेम और भी दृढ़ हो गया। इस सम्बन्ध में श्री मन्मथनाथ गुप्त अपनी पुस्तक 'भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास' में लिखते हैं—

"आज़ाद ने मजिस्ट्रेट के सामने चुनौती दी। आज़ाद ने ठीक ही कहा था कि कुशासन में आज़ाद लोगों का स्थान जेलखाना ही होता है। खरेघाट ने सोचा कि यह बालक है, इसे ऐसी सजा देनी चाहिए, जिससे कि इसे कुछ सबक हो और यह इन बातों को छोड़कर पढ़ने-लिखने में लगे। इसके अनुसार उन्हें पन्द्रह बेंत मारने की सजा दी गई। जेल में ले जाकर उन्हें बेंत लगाये गये। पर एक-एक बेंत मारा जाता था और वे पहले से अधिक जोर से 'महात्मा गांधी की जय' बोलते थे। उन दिनों 'महात्मा गांधी की जय' का नारा भारत की युद्धयात्रा का नारा था।"

वास्तव में स्वतन्त्रता शरीर की नहीं मन की होती है। व्यक्ति के शरीर को बन्दी बनाया जा सकता है, मन को नहीं। सच्चे स्वतन्त्रता प्रेमी अत्याचारी शासन के लिए आँखों की किरकिरी बन जाते हैं, अतः उनका जीवन अधिकतर कारागारों में ही बीतता है। ब्रिटिश शासन में सभी देशप्रेमियों का घर जेल में ही बन गया था, इसलिए चन्द्रशेखर से जब मजिस्ट्रेट ने उनके घर के विषय में पूछा तो उन्होंने जेल को ही अपना घर बताया। उनके इस उत्तर में गम्भीर अर्थ छिपा था जो सरकार के अत्याचारों की ओर संकेत करता था।

इस घटना ने किशोर अवस्था में ही चन्द्रशेखर को एक लोकप्रिय नेता के रूप में प्रसिद्ध कर दिया। यद्यपि यह सजा क्रूर अवश्य थी, फिर भी इसे कोई भारी सजा नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह घटना उनके भावी क्रान्तिकारी जीवन के लिए प्रथम सोपान थी। इस दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण घटना है और इसी घटना के बाद वह चन्द्रशेखर से चन्द्रशेखर आज़ाद बने थे; वीर चन्द्रशेखर आज़ाद।

उनकी बेंतों की सजा का यह समाचार उनके घर वालों तक पहुँच गया, क्योंकि यह समाचार देश के सभी समाचार-पत्रों में छपा था। समाचार को पढ़कर उनके घर के लोग अत्यंत चिन्तित हुए। पिता श्री सीताराम तिवारी सीधे बनारस पहुँचे। उन्होंने पुत्र को अनेक प्रकार

सारा शरीर लहूलुहान हो गया, किन्तु चन्द्रशेखर ने उफ तक नहीं की; उनके मुखमण्डल पर पीड़ा या विषाद का कोई चिह्न नहीं था। उनके इस प्रकार के धैर्य, साहस तथा देशप्रेम को देखकर सभी उपस्थित लोग आश्चर्यचकित रह गये।

चन्द्रशेखर को मिली बेंतों की सजा का समाचार पूरे बनारस नगर में फैल गया था। जनता फूलमालाएँ लेकर उनका स्वागत करने जेल के दरवाजे पर पहुँच गई। जनता में बालक, युवा एवं वृद्ध तथा स्त्री एवं पुरुष सभी ने उनको फूलों की मालाएँ पहनाकर उनका स्वागत किया, उन्हें अपने कन्धों पर उठा लिया और 'चन्द्रशेखर आजाद की जय', 'भारतमाता की जय' तथा 'महात्मा गांधी की जय' आदि नारों से आकाश गूँज उठा।

उसी दिन बनारस के ज्ञानवापी नामक स्थान पर एक सभा हुई। वहाँ भी लोगों की अपार भीड़ इस वीर बालक के दर्शनों के लिए उपस्थित थी। चन्द्रशेखर आजाद मंच पर आये तो उनके ऊपर फूलों की वर्षा की गई; वह पुष्पमालाओं से लद गये। इस समय वह धोती एवं कुर्ता पहने हुए थे, उनके माथे पर चन्दन का तिलक लगा हुआ था। मंच पर से उन्होंने एक संक्षिप्त-सा भाषण दिया, जिसमें उन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिए कार्य करने की प्रार्थना की तथा इस पावन कार्य के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर देने वाले वीरों को अपनी श्रद्धांजली दी। जन समुदाय ने पुनः 'चन्द्रशेखर आजाद जिन्दाबाद' के नारे लगाये। इसके पश्चात अन्य लोगों ने भी भाषण दिये, जिनमें चन्द्रशेखर आजाद के वीरतापूर्ण कार्य की प्रशंसा की गई।

उन दिनों बनारस से 'मर्यादा' नामक एक पत्र निकलता था, जिसके प्रकाशक श्री शिवप्रसाद गुप्त तथा सम्पादक श्री सम्पूर्णानन्द थे। श्री सम्पूर्णानन्द बाद में उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री तथा राजस्थान के राज्यपाल भी बने। 'मर्यादा' में चन्द्रशेखर आजाद का चित्र तथा 'वीर बालक आजाद' नाम से उनके विषय में एक लेख भी प्रकाशित हुआ जिसमें उनके वीरतामय कार्य तथा अद्भुत साहस की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी।

यद्यपि अदालत में मजिस्ट्रेट खरेघाट ने चन्द्रशेखर को सबक सिखाने के उद्देश्य से 'बेंतों' की सजा दी थी, किन्तु इस सजा से मातृभूमि के प्रति

उनका प्रेम और भी दृढ़ हो गया। इस सम्बन्ध में श्री मन्मथनाथ गुप्त अपनी पुस्तक 'भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास' में लिखते हैं—

"आज़ाद ने मजिस्ट्रेट के सामने चुनौती दी। आज़ाद ने ठीक ही कहा था कि कुशासन में आज़ाद लोगों का स्थान जेलखाना ही होता है। मजिस्ट्रेट ने सोचा कि यह बालक है, इसे ऐसी सजा देनी चाहिए, जिससे कि इसे कुछ सबक हो और यह इन बातों को छोड़कर पढ़ने-लिखने में लगे। इसके अनुसार उन्हें पन्द्रह बेंत मारने की सजा दी गई। जेल में ले जाकर उन्हें बेंत लगाये गये। पर एक-एक बेंत मारा जाता था और वे पहले से अधिक जोर से 'महात्मा गांधी की जय' बोलते थे। उन दिनों 'महात्मा गांधी की जय' का नारा भारत की मुक्तियात्रा का नारा था।"

वास्तव में स्वतन्त्रता शरीर की नहीं मन की होती है। व्यक्ति के शरीर को बन्दी बनाया जा सकता है, मन को नहीं। सच्चे स्वतन्त्रता प्रेमी अत्याचारी शासन के लिए आंखों की किरकिरी बन जाते हैं, अतः उनका जीवन अधिकतर कारागारों में ही बीतता है। ब्रिटिश शासन में सभी देशप्रेमियों का घर जेल में ही बन गया था, इसलिए चन्द्रशेखर से जब मजिस्ट्रेट ने उनके घर के विषय में पूछा तो उन्होंने जेल को ही अपना घर बताया। उनके इस उत्तर में गम्भीर अर्थ छिपा था जो सरकार के अत्याचारों की ओर संकेत करता था।

इस घटना ने किशोर अवस्था में ही चन्द्रशेखर को एक लोकप्रिय नेता के रूप में प्रसिद्ध कर दिया। यद्यपि यह सजा क्रूर अवश्य थी, फिर भी इसे कोई भारी सजा नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह घटना उनके भावी क्रान्तिकारी जीवन के लिए प्रथम सोपान थी। इस दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण घटना है और इसी घटना के बाद वह चन्द्रशेखर से चन्द्रशेखर आज़ाद बने थे; वीर चन्द्रशेखर आज़ाद।

उनकी बेंतों की सजा का यह समाचार उनके घर वालों तक पहुँच गया, क्योंकि यह समाचार देश के सभी समाचार-पत्रों में छपा था। समाचार को पढ़कर उनके घर के लोग अत्यंत चिन्तित हुए। पिता श्री सीताराम तिवारी सीधे बनारस पहुँचे। उन्होंने पुत्र को अनेक प्रकार

से समझाया तथा उन पर जोर डाला कि वह घर लौट चलें, किन्तु आजाद भी बचपन से ही अपने हठ के धनी थे। वह देश-सेवा का व्रत ले चुके थे। किसी भी श्रेष्ठ व्यक्ति के लिए अपना लक्ष्य ही सबसे महान होता है। महापुरुष जिस कार्य को करने की ठान लेते हैं, दुनिया भर की विपत्तियां आ जाने पर भी, वह अपने मार्ग से नहीं हटते, अतः उन्होंने अपने पिताजी का यह प्रस्ताव नहीं माना। पिताजी निराश होकर वापस घर लौट गये।

यह उनका अपने घर के प्रति एक प्रकार का विद्रोह ही था। वस्तुतः आजाद की दृष्टि में सारा देश ही अपना घर था। आचार्य चाणक्य ने कुल के लिए एक व्यक्ति का, ग्राम के लिए कुल का तथा राज्य अथवा देश के लिए ग्राम का भी परित्याग करने की शिक्षा दी है। चन्द्रशेखर आजाद ने भी ऐसा ही किया, उन्होंने भारत भूमि के हित में सकीर्ण पारिवारिक मोह तथा उसके सम्बन्धो को तिलांजलि दे दी।

## द्वितीय अध्याय

# क्रान्ति की ओर

पूर्ववर्णित बनारस की घटना के बाद और चन्द्रशेखर आज़ाद के चरण स्वतन्त्रता आन्दोलन की ओर बढ़ते गये। वे पूर्णतया देशभक्ति के रंग में रँग गये; पढ़ाई से उनका मन उठ गया, वे अपने विद्यालय के साथियों को भी देश की स्वतन्त्रता के आन्दोलन में भाग लेने के लिए तैयार करने लगे। आज़ादी प्राप्त करना ही आज़ाद का लक्ष्य बन गया।

### आन्दोलन की वापसी : आज़ाद की निराशा

असहयोग आन्दोलन ने चन्द्रशेखर आज़ाद को एक नई दिशा दिखाई थी, वह भारत की स्वतन्त्रता के सपने देखने लगे थे। इसके लिए उनके मन में कुछ करने की तमन्नाएँ थीं, किन्तु अगले ही वर्ष चौरीचौरा की घटना के कारण महात्मा गांधी ने असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया। घटना इस प्रकार घटी कि असहयोग आन्दोलन पूरे ज़ोरों में चल रहा था, कई आन्दोलनकारी जेलों में बन्द कर दिये गए थे। यह आन्दोलन पूरी तरह अहिंसात्मक था। गोरखपुर के पास चौरीचौरा नामक स्थान पर पुलिस के अत्याचारों से आन्दोलनकर्मी अपना आपा खो बैठे, उनकी भीड़ ने एक थाने में आग लगा दी। इस आग में एक दरोगा तथा इक्कीस सिपाहियों की जलकर मृत्यु हो गई। यह घटना 12 फरवरी, 1922 को घटी थी, जिसे इतिहास में 'चौरीचौरा काण्ड' के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार की हिंसा को देखकर गांधीजी ने आन्दोलन रोक दिया। 13 मार्च, 1922 को गांधीजी गिरफ्तार कर लिये गये। इस समय आन्दोलन का उत्साह अपनी चरम सीमा पर था, अतः महात्मा गांधी के इस निर्णय से भारी निराशा हुई। महात्माजी के इस प्रकार के निर्णय के विरुद्ध

में श्री मन्मथनाथ गुप्त लिखते हैं—

"...महात्मा गांधी ने इस पर आम लोगों में अहिंसा के भाव की कमी देखकर आन्दोलन को स्थगित कर दिया। 13 मार्च को गांधीजी भी गिरफ्तार कर लिये गए। एक आश्चर्य की बात यह है कि जब तक आन्दोलन जोरों से चलता रहा और गांधी जी खुल्लमखुल्ला तौर पर उसका नेतृत्व कर रहे थे, उस समय तक उनको किसी ने नहीं पकड़ा, किन्तु ज्यों ही आन्दोलन को बन्द कर दिया गया, त्यों ही सरकार ने उनको पकड़ लिया। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं थी, क्योंकि गांधीजी जिस समय आन्दोलन चला रहे थे, उस समय वह तैंतीस करोड़ थे, किन्तु जिस समय उन्होंने आन्दोलन स्थगित कर दिया और लोगों की बढ़ती हुई उमंगों पर पानी फेर दिया, उनको एक सामयिक विपत्ति के नाम पर निरुत्साह कर दिया, उस समय वे एक व्यक्ति हो गये।"

श्री गुप्त के इन शब्दों में कुछ अत्युक्ति हो सकती है, किन्तु इतना निश्चित है कि एक मामूली-सी घटना के कारण आन्दोलन को इस प्रकार बीच में ही रोक देने से भारतीयों को विशेषकर युवा वर्ग को इससे बड़ी निराशा हुई। गुप्तजी स्वयं एक क्रान्तिकारी रहे हैं, अतः उनके इन शब्दों से तत्कालीन क्रान्तिकारियों के मनोभावों का सुन्दर परिचय मिलता है। आन्दोलन के इस प्रकार बीच में ही रुक जाने पर चन्द्रशेखर आज़ाद को बड़ी निराशा हुई, किन्तु उनकी यह निराशा स्थायी न होकर एक क्षणिक आवेश मात्र थी। वह जिस मार्ग पर बढ़ चुके थे, उससे पीछे लौटने का उनके लिए प्रश्न ही नहीं उठता था।

गतिविधियों से अछूता नहीं रहा था। इन गतिविधियों में बंगाल के क्रान्तिकारियों की भूमिका महत्वपूर्ण रही थी। कुछ समय के लिए क्रान्तिकारी आन्दोलन समाप्त जैसा हो गया था। बनारस षड्यन्त्र के नेता शचीन्द्रनाथ सान्याल को इस षड्यन्त्र में आजन्म कालेपानी की सजा तथा अन्य लोगों को भी अनेक प्रकार की सजाएं हुई थीं। सन् 1920 में सभी राजनीतिक बन्दियों को आम माफी दे दी गई थी, फलतः ये सभी क्रान्तिकारी छूट गये। इधर असहयोग आन्दोलन के इस प्रकार बीच में ही समाप्त हो जाने पर युवक खिन्न थे। शचीन्द्रनाथ सान्याल ने इस अवसर का लाभ उठाया तथा पुनः क्रान्तिकारी दल का गठन किया। सान्याल का मुख्य क्षेत्र उत्तर प्रदेश ही था। उन्होंने शीघ्र ही क्रान्तिकारी दल को सुदृढ़ बना लिया। इन्हीं दिनों बंगाल में अनुशीलन समिति नाम की क्रान्तिकारियों की संस्था भी कार्य कर रही थी। अनुशीलन समिति ने बनारस में कल्याण आश्रम नाम के एक आश्रम की स्थापना भी की थी, यह आश्रम वास्तव में समिति के सदस्य क्रान्तिकारियों का कार्यालय ही था।

क्रान्तिकारी दल तथा अनुशीलन समिति लम्बे समय तक अलग-अलग कार्य करते रहे। दोनों के उद्देश्य तथा कार्यप्रणालियाँ समान थीं, अतः बाद में ये दोनों मिलकर एक दल के रूप में कार्य करने लगे। इस संयुक्त दल का नाम 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' रखा गया। इस एसोसिएशन के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य थे—

1. संगठित क्रान्ति द्वारा गणतन्त्र स्थापित करना, जिसमें प्रान्तों को आन्तरिक मामलों में पूर्ण स्वतन्त्रता होगी।
2. प्रत्येक सही समझ मस्तिष्क वाले वयस्क नागरिक को मताधिकार।
3. शोषण रहित समाज की स्थापना।

स्पष्ट है कि ये सभी उद्देश्य साम्यवादी रूस की शासन प्रणाली से प्रभावित थे। कुछ ही वर्ष पूर्व सन् 1917 में अक्तूबर क्रान्ति के बाद सोवियत संघ में साम्यवाद की स्थापना हो चुकी थी। 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' के सदस्य पूरे उत्तर प्रदेश में फैले हुए थे। शाहजहाँपुर में पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल, कानपुर में सुरेश बाबू तथा बनारस में थी

राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी तथा श्री रवीन्द्रमोहन कर इस दल के कार्यों को आगे बढ़ा रहे थे।

इन दिनों चन्द्रशेखर आज़ाद भी बनारस में प्रसिद्ध हो चुके थे, तब क्रान्तिकारी दल का एक सदस्य प्रणवेश उनसे मिला। आज़ाद से मिलकर प्रणवेश अत्यधिक प्रभावित हुआ। इस प्रकार आज़ाद भी 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' के सदस्य बन गये। यहीं उनकी भेंट रामप्रसाद बिस्मिल आदि महान् क्रान्तिकारियों से हुई और यहीं से उनके भावी क्रान्तिकारी जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ।

दल के संगठन में :

आज़ाद हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन के सदस्य बन गये, तभी दल की सदस्यता का विस्तार किया जाना निश्चित हुआ। आज़ाद ने इस कार्य में बढ़-चढ़कर भाग लिया। वह ब्राह्मण के वेश में इधर-उधर घूमते रहते तथा युवकों से मिलते और उनके विचार जानते। क्रान्तिकारी विचारों वाले युवकों को खोजकर अपने दल का सदस्य बनाते। इस प्रकार थोड़े ही समय में उनके प्रयत्नों से दल के सदस्यों की संख्या बढ़ने लगी, किन्तु दल के पास धन का अभाव था। यद्यपि दल की जनशक्ति में भारी वृद्धि हो गई थी, परन्तु दल के पास साधनों की कमी थी। इस कमी को दूर करने के लिए दल के सदस्यों की बैठकें हुईं।

था। उसने एक नई योजना रखी। योजना इस प्रकार थी कि गाज़ीपुर में निर्मले साधुओं का एक मठ था। मठ के महन्त के पास अपार धन था और मठ की अपनी भी पर्याप्त सम्पत्ति थी। महन्त वृद्ध हो चला था और रोगी था; आशा थी वह शीघ्र ही संसार से चल बसेगा। अतः क्रान्तिकारियों के दल के किसी सदस्य को महन्त का शिष्य बनाना था, जिससे महन्त के मरने के बाद महन्त तथा मठ की सम्पत्ति क्रान्तिकारियों के काम आ सके। इस समय महन्त को किसी शिष्य की आवश्यकता भी थी। दल के सभी सदस्यों ने इस कार्य के लिए चन्द्रशेखर आज़ाद को ही उपयुक्त समझा। उन्हें पूरा विश्वास था कि महन्त उन्हें देखकर अवश्य अपना शिष्य बना लेगा। इस कार्य के लिए सबने एक स्वर से चन्द्रशेखर आज़ाद का नाम प्रस्तावित किया, किन्तु चन्द्रशेखर आज़ाद इससे सहमत नहीं हुए। वह इसे पाखण्ड और धोखा समझते थे, किन्तु दल को धन की अत्यन्त आवश्यकता थी, अतः इसे देखते हुए और साथियों के दबाव के कारण उन्हें यह बात माननी पड़ी।

### महन्त के शिष्य के रूप में :

पूरी योजना बनाकर ब्रह्मचारी साधु के रूप में आज़ाद गाज़ीपुर के उक्त मठ में पहुँच गये। माथे पर चन्दन, गेरुआ परिधान, रुद्राक्ष की मालाएँ उनके व्यक्तित्व को एक अनोखी भव्यता प्रदान कर रही थी। वैसे भी उनकी देह सुन्दर-सुडौल एवं आकर्षक थी। अपने व्यक्तिगत जीवन में भी वह ब्रह्मचारी थे। महन्त के पास आकर उन्होंने उसका शिष्य बनने की इच्छा व्यक्त की। महन्त उनके मनमोहक व्यक्तित्व एवं बलिष्ठ शरीर को देखकर तुरन्त सहमत हो गया। वह महन्त के शिष्य बन गये। उनकी सेवा से बीमार महन्त धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगा।

निर्मले साधु सिख होते हैं, जो 'गुरु ग्रन्थ साहब' की उपासना करते हैं। वहाँ रहकर आज़ाद ने गुरुमुखी लिपि तथा पंजाबी भाषा का भी अध्ययन किया, क्योंकि मठ का महन्त बनने के लिए यह आवश्यक था।

यद्यपि मठ में किसी प्रकार का कोई भी अभाव नहीं था, फिर भी आज़ाद शी[illegible]े; उन्हें वहाँ एकदम बन्दी जीवन जैसा लगने लगा।

कहाँ एक क्रान्तिकारी युवक; कहाँ मठ का जीवन! उनकी स्थिति पिंजरे में बन्द शेर के समान हो गई। केवल दो महीनो में ही वह इस जीवन से ऊब गये। उनकी सहन-शक्ति जवाब देने लगी। वे तो यह समझकर आये थे कि महन्त बीमार है, इसलिए जल्द ही चल बसेगा, किन्तु यहाँ उल्टा ही हो रहा था; मरने की तो बात ही दूर, वह और भी अधिक तगड़ा हो रहा था। अतः इस सम्बन्ध में अपने साथियों को एक पत्र लिखा—"महन्त के मरने के कोई आसार नजर नही आ रहे हैं। आपका अनुमान सही नहीं था; वह दिन पर दिन मोटा होता जा रहा है। मठ की सम्पत्ति हाथ में आयेगी, हमें यह आशा छोड़ देनी चाहिए। मुझे इस बन्धन से मुक्त होने की आज्ञा दो।"

पत्र दल के लोगों को मिला, वे किसी भी कीमत पर मठ की सम्पत्ति को हाथ से नही जाने देना चाहते थे। अतः पत्र मिलते ही दो और सदस्य गोविन्दप्रकाश तथा मन्मथनाथ गुप्त साधु वेश में गाजीपुर पहुँचे। गोविन्दप्रकाश गुरू तथा मन्मथनाथ गुप्त चेला बने थे। दोनो मठ में पहुँचे और पहले महन्त से मिले तथा फिर चन्द्रशेखर आजाद से। फिर वे मठ के अंदर में घूमे-फिरे। मठ एक किले की तरह था। चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारें थी। उन्होने मठ की सम्पत्ति को भी देखा। मठ दल के कार्यक्रमों के लिए पूर्णतया उपयुक्त जगह थी। उसकी सम्पत्ति दल को सुदृढ़ बनाने के काम आ सकती थी। गोविन्द प्रकाश तथा मन्मथनाथ गुप्त ने इस पर सब प्रकार से विचार किया और उन्होंने आजाद को वहीं बने रहने का परामर्श दिया। आजाद इसे मान ही नहीं रहे थे, परन्तु दोनों साथियों ने उनपर इतना दबाव डाला कि उनकी एक भी न चलने दी। तब विवश होकर आजाद को उनकी बात माननी पड़ी। गोविन्द प्रकाश तथा मन्मथनाथ दोनों वापस चले गये।

विवशता में लिये गए निर्णय पर दृढ़ रहना सरल नहीं होता। यद्यपि उस समय चन्द्रशेखर आजाद ने अपने साथियों के दबाव में आकर मठ में बने रहने की बात स्वीकार कर ली थी, किन्तु उनका मन उस मठ में नहीं लग सका। उनके लिए वहाँ रहना असम्भव हो गया। अत एक दिन महन्त को बताए बिना आजाद चुपचाप इस बन्धन से आजाद हो गये

और साथियों के पास बनारस पहुँच गये।

आज़ाद के इस प्रकार मठ को छोड़कर चले आने से उनके साथियों को बड़ी निराशा हुई। उन्हें लगा कि हाथ में आया खजाना चला गया है। दल के पास धन की कमी के कारण उसका काम भी आगे नहीं बढ़ सकता था। अब आज़ाद पुनः दल के संगठन में जुट गये। यद्यपि उनके कठोर परिश्रम से धन की कमी कुछ दूर हुई, किन्तु इससे कुछ नहीं हो सकता था, अतः उन्होंने कुछ नई योजनाओं पर विचार किया।

## दल के लिए ऋण और चन्दे :

'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' ने धन एकत्रित करने का उत्तरदायित्व मुख्य रूप से चन्द्रशेखर आज़ाद को सौंपा। आज़ाद तत्परता से इस काम में जुट गये। उनका व्यक्तित्व बड़ा ही मनमोहक था तथा वह बातचीत करने की कला में भी कुशल थे, अतः जो भी व्यक्ति उनके सम्पर्क में आता, उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। कदाचित् उनके इन्हीं गुणों से पण्डित मोतीलाल नेहरू भी प्रभावित थे। इतिहास की पुस्तकों में लिखा मिलता है कि विभिन्न राजनीतिक काण्डों में फरार हो जाने पर भी आज़ाद उनसे मिलते रहते थे तथा आर्थिक सहायता प्राप्त करते रहते थे।

पण्डित मोतीलाल नेहरू दल को यदा-कदा चन्दा देते रहते थे। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन सदा ही मुक्तहस्त से क्रान्तिकारियों को आर्थिक सहायता देते रहते थे। प्रसिद्ध साहित्यकार शरत्चन्द्र कलकत्ता के अटार्नी जनरल निर्मलचन्द्र तथा वहीं के एडवोकेट जनरल सर एस० एन० सरकार आदि महानुभाव भी इन क्रान्तिकारियों को नियमित रूप से चन्दा देते रहते थे। दल की सदस्य संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही थी, फलस्वरूप खर्चे भी बढ़ते जा रहे थे। धन के अभाव में आज़ाद तथा उनके साथियों को भयंकर तंगी का सामना करना पड़ता था। कभी-कभी तो हालात ऐसे भी हो जाते कि सभी को भूखा रह जाना पड़ता। भयंकर सर्दी में साधारण कपड़ों से ही गुज़ारा करना पड़ता था। इन अभावों के होते हुए भी इन वीरों के उत्साह में कोई कमी नहीं आई; मातृभूमि की स्वतन्त्रता के कार्य को वे अनवरत रूप से आगे बढ़ाते रहे। इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए

आज़ाद ने अपने मित्रों से कई बार ऋण भी लिया था। यहाँ उनके जीवन की इसी प्रकार की कुछ घटनाओं का वर्णन किया जा रहा है, जिनसे दल के प्रति उनके निःस्वार्थ प्रेम का परिचय प्राप्त होता है। कहा जाता है एक बार दल के सामने धन की परम आवश्यकता थी; क्योंकि पिस्तौलें खरीदनी थीं। क्या किया जाए? आज़ाद इसी चिन्ता में डूबे हुए थे। दोपहर के समय एक व्यक्ति उनके पास आया। उसने बताया कि उनके (आज़ाद के) माता-पिता घर में भूखों मर रहे हैं। उनके लिए वह व्यक्ति इधर-उधर से माँगकर किसी तरह कुछ रुपये लाया था। उसने ये रुपये चन्द्रशेखर आज़ाद को दे दिये, ताकि वह इन्हें अपने माता-पिता के पास भिजवा दें।

रुपये मिलने पर आज़ाद ने उस व्यक्ति का आभार प्रकट किया और इसे ईश्वर की सहायता मानते हुए उस व्यक्ति से कुछ इस तरह की बात की—

"इन रुपयों के लिए मैं तुम्हारा आभार प्रकट करता हूँ। इस समय दल को इनकी बहुत बड़ी आवश्यकता थी। ईश्वर की कृपा से तुम सही समय पर आ गये।"

आज़ाद की इन बातों को सुनकर, वह व्यक्ति बड़ा हैरान हुआ और बोला, "पण्डितजी! मैंने यह पैसा आपके माता-पिता की सहायता के लिए दिया है। वे भूखों मर रहे हैं, पर समझ में नहीं आता, आप इस पैसे को दल के लिए खर्च करना चाहते हैं।"

इस पर आज़ाद बोले, "भैया, देश के करोड़ों लोग भूखों मर रहे हैं, मुझे केवल अपने ही माता-पिता की नहीं, अपितु पूरे देश की चिन्ता है। इसके लिए इस समय पिस्तौल खरीदना नितान्त आवश्यक है। देश की ऐसी स्थिति में केवल अपने परिवार की चिन्ता करना स्वार्थ मात्र है।"

उनके इस उत्तर ने उस व्यक्ति को निरुत्तर कर दिया और वह लौट गया।

इसी प्रकार एक बार फिर दल को रुपयों की अत्यन्त आवश्यकता थी। दल के अध्यक्ष ने यह समस्या आज़ाद के समक्ष रखी और उन्हें बताया कि दल को तुरन्त चार हज़ार रुपयों की आवश्यकता थी। यदि यह पैसा न का काम रुक जाता। समस्या के महत्त्व पर विचार करके

आजाद गम्भीर हो गये, किन्तु विपत्ति से घबराना उन्होंने सीखा ही नहीं था। उन्होंने पैसों का प्रबन्ध करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया और अध्यक्ष से निश्चिन्त रहने को कह दिया। उनका एक मित्र था, जो रुपयों के लेन-देन का कार्य करता था। वह आजाद का बड़ा सम्मान करता था। आजाद उसी के पास पहुँचे। उन्होंने मित्र के सामने अपनी समस्या रखी। और बताया कि उन्हें तत्काल चार हजार रुपयों की आवश्यकता थी, किन्तु इस समय उस मित्र के पास भी रुपये नहीं थे। उसने दूसरे दिन रुपयों का प्रबन्ध कर देने की बात कही, परन्तु चन्द्रशेखर आजाद अपने दल के अध्यक्ष को उसी दिन पैसे देने का वचन दे चुके थे। अतः उन्होंने मित्र से कहा कि उन्हें तत्काल रुपयों की आवश्यकता थी। वह कहीं से भी प्रबन्ध कर दे और वायदा किया कि रुपया छः महीने बाद ब्याज सहित लौटा दिया जायेगा। मित्र भी बड़ी दुविधा में पड़ गया। इसके बाद उनके उन मित्र ने किसी दूसरे व्यक्ति से चार हजार रुपये कर्ज लेकर उन्हें दे दिये।

इस प्रकार चन्द्रशेखर आजाद दल की आवश्यकता के लिए किसी प्रकार कर्ज लेकर भी रुपयों का प्रबन्ध कर देते थे। चन्द्रशेखर आजाद तथा उनके सभी साथी बड़ी ही निर्धनता की स्थिति में जीवन का निर्वाह करते, किन्तु दल के पैसों का हिसाब बड़ी सावधानी और ईमानदारी से रखा जाता। एक पैसे का भी अपव्यय नहीं किया जाता।

दुकान में मुनीमगीरी :

मिलता था, उसमें से थोड़ी-सी राशि अपने पास रखकर शेष रुपये वह दल को दे देते थे।

इस प्रकार आज़ाद का पूरा जीवन ही दल के लिए समर्पित था। दल की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए वह निरन्तर प्रयत्न करते रहते थे। यही नहीं दल का प्रत्येक कार्य करने में वे सदा आगे रहते थे, इसीलिए दल में उन्हें 'क्विक सिल्वर' अर्थात् पारा कहा जाता था।

क्रान्ति का पर्चा :

धीरे-धीरे 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' की शाखाएं उत्तरी भारत में कलकत्ता से लेकर लाहौर तक फैल गईं। इसका केन्द्र बनारस था। हथियार एकत्रित करने का कार्य रामप्रसाद बिस्मिल का था। सभी हथियार बनारस में इकट्ठा करके विभिन्न केन्द्रों को भेजे जाते थे, किन्तु बन्दूक, रिवाल्वर आदि अनेक प्रकार के हथियारों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना कोई आसान कार्य नहीं था। इन्हें प्रथम या द्वितीय श्रेणी के डिब्बों में ही ले जाया जा सकता था। अनेक कठिनाइयों के बाद भी वे हथियार विभिन्न केन्द्रों पर भिजवा दिये गए। इस प्रकार दल के विभिन्न केन्द्रों पर हथियारों का अच्छा खासा भण्डार जमा हो गया था। अब दल ने सरकार को चेतावनी देने की सोची।

एक योजना बनी, जिसके अनुसार एक पर्चा छपवाया गया। इस पर्चे में दल के उद्देश्यों का परिचय दिया गया था तथा जनता से अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध क्रान्ति कर देने की अपील की गई थी। यह पर्चा पीले कागज़ पर था। योजना के अनुसार इस बात पर भलीभांति विचार कर लिया गया कि पर्चा सभी शहरों में एक ही दिन लगाया जाए। ऐसा न करने पर पुलिस सावधान हो जाती और पर्चे जब्त कर लिये जाते। इससे जनता दल के उद्देश्यों से परिचित नहीं हो पाती। अतः जनवरी, 1925 में एक दिन रंगून से लेकर पेशावर तक लोगों ने इन पर्चों को एक साथ देखा। दल के सदस्य इन पर्चों को लेकर स्वयं सभी शहरों में गए थे। प्रत्येक स्कूल, कालेज, दफ्तर, बाज़ार, मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारा, सिनेमाघर तथा अन्य सभी सार्वजनिक स्थानों पर ये पर्चे चिपके हुए पाये गए। यू० [illegible]

इतनी सावधानी एवं गोपनीयता के साथ किया गया कि किसी को इसका पता भी न लग पाया।

बनारस में पर्चे चिपकाने तथा बाँटने का काम चन्द्रशेखर आज़ाद ने किया था। उन्होंने बड़ी चतुरता से कार्यालयों के कर्मचारियों को भी अपनी ओर मिलाकर उन्हीं के हाथों पर्चे बँटवा दिये। दल मे उनके इस कार्य की सराहना की गई।

इस कार्य से क्रान्तिकारी दल देश-भर में प्रसिद्ध हो गया। किसी ने सपने में भी यह नहीं सोचा था कि दल का विस्तार इतना अधिक है। इससे सरकार चिन्ता मे पड़ गई। पुलिस तथा गुप्तचर विभाग दल की खोज में जी-जान से जुट गए।

तृतीय अध्याय

# साध्य और साधना

प्रारम्भ में क्रान्ति शब्द का अर्थ ही हिंसा के माध्यम से सत्ता-परिवर्तन करना था, भले ही आज क्रान्ति शब्द अन्य अर्थों में भी प्रयुक्त होने लगा है, जैसे हरित क्रान्ति अथवा औद्योगिक क्रान्ति इत्यादि। अतः क्रान्ति पथ के पथिकों के लिए अपना साध्य देश को स्वतन्त्र कराना ही सर्वोपरि था। इसमें साधनों की पवित्रता पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। भारत ही नहीं आयरलैण्ड एवं सोवियत संघ के क्रान्तिकारियों ने भी अपने साध्य के लिए हिंसक साधनों को अपनाया था। इन क्रान्तिकारियों के पास आय के कोई साधन तो थे नहीं, अपने लक्ष्य पर आगे बढ़ने के लिए इन्हें धन की आवश्यकता पड़ती थी, जिसके लिए चन्दा माँगने पर भी धन का अभाव अथवा कमी बनी रहती थी, अत. विवशता के कारण इन्हें डाके भी डालने पड़ते थे।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही बंगाल के क्रान्तिकारियों ने क्रान्ति के लिए डकैतियों को अपनी कार्यप्रणाली का अंग बना लिया था। बंगाल के एक प्रसिद्ध पत्र युगान्तर के एक लेख से इस बात का परिचय मिलता है कि पवित्र साध्य के लिए डकैतियों को क्रान्तिकारी अनुचित नहीं समझते थे।

की आवश्यकता होती है, उसे प्राप्त करने हेतु आरम्भ में देशवासियों पर डकैती डालनी होगी। यह तो स्पष्ट है कि धनी इसमें पैसा नहीं देंगे। बाद में श्री अरविन्द घोष ने समझाया कि स्वतन्त्रता के लिए डकैती करने में जिस राजनीतिक दोष की कल्पना की जाती है, वह पूर्णतया निराधार है। अन्त में रंगपुर के एक प्रतिनिधि ने कहा कि हम लोग डकैती करके जो-कुछ भी लाएँ, उसका सही-सही हिसाब रखा जाए और स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद जिनसे जो-कुछ लिया जाए, वह उन्हें ठीक-ठीक लौटा दिया जाए। इस प्रस्ताव का अरविन्द घोष ने समर्थन किया और यह पास हो गया।"

ये क्रान्तिकारी इस नियम का पूर्णरूप से पालन करते थे। लूटे गये व्यक्ति के घर उससे लूटे गये धन की रसीद भेज दी जाती थी। सन् 1916 में कलकत्ता के गोरीराय क्षेत्र में एक डकैती हुई थी। इस डकैती का नेतृत्व श्री अतुल्य घोष एवं श्री पुलिन मुकर्जी ने किया था। बाद में लूटे गये घर के स्वामी के लिए एक पत्र भेजा गया था, जिसमें लिखा था—"हमारे कोष में आपके हिसाब में 9891 रु० 5 पाई दिये गए कर्ज़ के रूप में जमा हुए हैं। स्वतन्त्रता मिलने पर इस धन को ब्याज सहित लौटा दिया जाएगा।"

इन डाकों के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए श्री मन्मथनाथ गुप्त अपनी पुस्तक 'भगतसिंह और उनका युग' में इसी प्रकार के विचार प्रकट करते हैं। उनका आशय है, "क्रान्तिकारी अपने घरों से भी दल के लिए गहने चुराते थे। बंगाल में एक क्रान्तिकारी ने अपने घर डाका डलवाया था। पैसे का हिसाब बड़े ध्यान से रखा जाता था। चन्द्रशेखर आदि सभी बड़ी गरीबी से जीवन बसर करते थे।...आयरलैण्ड और रूस के क्रान्तिकारियों द्वारा भी डाके डाले गए। स्टालिन भी बाकू के पास डाली गई डकैती में शामिल थे। इंगलैण्ड में सोवियत संघ के प्रथम राजदूत क्रासिन भी डकैतियों में शामिल हुए थे। इसे विदेशी क्रान्तिकारी जबरदस्ती वसूल किया गया चंदा कहते थे। सिडीशन कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार एक डकैती डालने पर क्रान्तिकारियों ने रसीद छोड़ दी थी—इतनी रकम ली गई है। भारत स्वतन्त्र होने पर कर्ज़ा अदा कर दिया जाएगा।

क्रान्तिकारियों के समक्ष धन की समस्या सदा बनी रही। चन्द्रशेखर

आज़ाद जब क्रांतिकारी दल में शामिल हुए, तो दल का सदस्य होने के कारण उन्हें भी इस समस्या का सामना करना पड़ा। इस समस्या के कारण दल के सदस्यों को भोजन एवं वस्त्र-जैसी सामान्य आवश्यकताओं के लिए भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। कभी-कभी तो सदस्यों के लिए भोजन का प्रबन्ध करना भी कठिन हो जाता था। यहाँ तक कि कभी-कभी भोजन न मिलने पर क्रांतिकारियों को भिखारियों के लिए खोले गए लंगरों में जाकर अपनी भूख शान्त करनी पड़ती थी, किन्तु आज़ाद को इस जगह पर भोजन करना बड़ा ही अपमानजनक लगता था। इसके साथ ही अन्य अनेक आवश्यकताएँ भी दल के सामने थीं। इन सब समस्याओं के निराकरण हेतु अमीर लोगों के यहाँ डाके डालने की योजना बनी।

## दल के कार्यों के लिए डकैतियाँ :

अन्य कोई रास्ता न देखकर दल ने डाके डालने आरम्भ कर दिये। पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल डकैतियों में दल का नेतृत्व करते थे। दल की ओर से इस प्रकार का पहला डाका प्रतापगढ़ के पास एक गाँव में मुखिया के घर डाला गया। रामप्रसाद अपने साथियों को लेकर डाका डालने के लिए चल पड़े। गाँव के बाहर गाँव के ही कुछ लोगों से उनकी मुलाकात हुई। गाँव के लोगों ने उनसे पूछा कि वे कहाँ जा रहे थे। इस पर उन्हें बताया गया कि दल के लोगों को गाँव के मुखिया के यहाँ दावत पर बुलाया गया था।

चन्द्रशेखर आज़ाद भी इस डकैती में शामिल थे। मुखिया के घर पहुँचने पर डाका डालने से पहले बिस्मिल ने अपने साथियों को निर्देश दिया कि "दल का उद्देश्य केवल धन प्राप्त करना है; किसी की हत्या करना नहीं। अतः केवल धन ही लूटा जाए और इस बात का ध्यान रहे कि किसी महिला के साथ कोई भी किसी प्रकार का अभद्र व्यवहार न करे।" साथी घर के अन्दर घुस गए और रामप्रसाद बिस्मिल स्वयं हाथ में पिस्तौल लेकर बाहर खड़े रहे, ताकि यदि कोई व्यक्ति बाहर से मदद के लिए आये, तो उसे अन्दर न जाने दिया जाए।

दल के लोग अन्दर लूटपाट करने लगे। घर में चीख-पुकार मच गई।

स्त्रियों के साथ किसी भी प्रकार की जबरदस्ती न करने का निर्देश था, उनके इस तरह के व्यवहार से फायदा उठाकर एक महिला ने चन्द्रशेखर आजाद के हाथ से पिस्तौल छीन लिया। स्त्री पर हाथ नहीं डाला जा सकता था। इधर चीख-पुकार सुनकर बाहर गाँव के कई लोग इकट्ठे हो चुके थे और उनकी संख्या बढ़ती जा रही थी। रामप्रसाद बिस्मिल उन्हें रोके खड़े थे। स्थिति गम्भीर हो गई थी, किन्तु किसी की भी हत्या नहीं करनी थी। तब बिस्मिल ने अपने साथियों को भाग चलने का संकेत किया और सब साथी भाग खड़े हुए। यहाँ से कुछ भी हाथ नहीं लगा, वरन् एक पिस्तौल से हाथ ही धोने पड़े। इस प्रकार दल को पहले ही डाके में असफलता का मुँह देखना पड़ा।

इसके बाद दूसरा डाका एक जमींदार के यहाँ डाला गया। सभी क्रांतिकारी घर के अन्दर लूटपाट करने लगे। इसी बीच दल के एक सदस्य की नजर घर की एक युवा लड़की पर पड़ी। उसे देखकर उस सदस्य का मन डोल पड़ा। वह उस लड़की के साथ दुर्व्यवहार करने लगा। चन्द्रशेखर आजाद ने उसे देख लिया और ऐसा न करने की चेतावनी दी, किन्तु उसने उनकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। उदार चरित्र आजाद से यह बर-दाश्त नहीं हुआ; वह क्रोधित हो उठे और उन्होंने अपने ही दल के उस सदस्य को गोली मार दी। इसके बाद उन्होंने उस लड़की के साथ हुए अभद्र व्यवहार के लिए उससे क्षमा माँगी और वहाँ से कुछ लूटे बिना चले गए। इस प्रकार दूसरी डकैती में भी कुछ हाथ नहीं लगा।

अपने एक साथी से दल के कार्य के लिए आजाद ने चार हजार रुपये कर्ज लिये थे। यह पैसा छः महीने बाद ब्याज सहित चुकाया जाना था। इसका उल्लेख पिछले अध्याय में हो चुका है। उस मित्र ने भी यह पैसा किसी दूसरे से लेकर दिया था। अभी तीन महीने ही हुए थे कि एक दिन वह मित्र आजाद के पास आया और उसने बताया कि वह व्यक्ति, जिससे उसने पैसे लिये थे, अपने पैसे माँग रहा था। अतः उसने आजाद से पैसे लौटाने की प्रार्थना की। इस पर आजाद बड़े असमंजस में पड़ गए। उन्होंने उस मित्र को अपनी परिस्थिति बताई तथा यह भी कहा कि वायदे के अनु-सार पैसे छः महीने बाद अवश्य लौटा दिये जाएँगे।

इस पर उस व्यक्ति ने अपनी विवशता उनके सामने रखी और बताया कि इस समय उनके पास भी पैसे नहीं थे, अन्यथा वह स्वयं लौटा देता तथा पैसा लौटाना भी नितान्त आवश्यक था। मित्र की विवशता देखकर आज़ाद ने उसे वचन दे दिया कि पैसे शीघ्र ही उसके घर पहुँचा दिये जाएँगे।

मित्र को दिये गए वचन का पालन करना जरूरी था, परन्तु रुपए कहाँ से लौटाए जाएँ। इसी उधेड़बुन में कुछ समय तक सोचते रहने के बाद आज़ाद एक निर्णय पर पहुँचे; उन्होंने मन-ही-मन कार्यक्रम की रूप-रेखा बना ली।

तब आज़ाद दिल्ली में थे। भरी दोपहर में वह अपनी योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिए निकल पड़े और चाँदनी चौक पहुँच गये। दिल्ली के सबसे व्यस्त एवं भीड़भाड़ वाले स्थानों में चाँदनी चौक भी एक है। उनके साथ उनके पाँच-छः साथी और भी थे। सुन्दर नये कपड़ों में सजे-धजे आज़ाद एक जौहरी की दुकान के सामने जा पहुँचे। उन्होंने साथियों को बाहर ही खड़े रहने को कहा तथा अपने आप दुकान के अन्दर घुस गये। अन्दर जाकर वह जौहरी के साथ आभूषणों के मूल्य तथा अन्य विषयों में बातें करने लगे। तभी उन्होंने अपने साथियों को संकेत किया। संकेत पाते ही बाहर खड़े साथी भी दुकान के अन्दर घुस गए। आस-पास के लोगों को कुछ पता भी न लग सका और आज़ाद अपने मित्रों के साथ जौहरी की दुकान से पन्द्रह हज़ार रुपये लूटकर भाग खड़े हुए।

चार हज़ार रुपये उस मित्र को समय पर लौटा दिये। रुपये लौटा

जा सकता है। काकोरी काण्ड तक वह 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' के सदस्य रहे। यहाँ उन्होंने शचीन्द्रनाथ सान्याल के नेतृत्व में काम किया, तब रामप्रसाद बिस्मिल आदि क्रान्तिकारी उनके साथी थे। इसे उनके क्रान्तिकारी जीवन का पूर्वार्द्ध कहा जा सकता है। इस काण्ड के बाद उन्होंने भगतसिंह आदि के साथ मिलकर क्रान्तिकारी गतिविधियों का संचालन किया। यह उनके इस जीवन का उत्तरार्द्ध कहा जाएगा।

## गवर्नर का सेक्रेटरी बनकर ठगी

उनके इस उत्तरार्द्ध जीवन में भी इस प्रकार की डकैती की योजनाएँ बनी थीं, किन्तु भगतसिंह जनता पर डाके डालने के पक्ष में नहीं थे। अतः डाके तो नहीं डाले गये, किन्तु सामान्यतया अन्य तरीकों से धन संग्रह अवश्य किया गया। अब वह स्वयं अपने दल के अध्यक्ष थे। एक बार उन्होंने कानपुर के एक सेठ से गवर्नर का सेक्रेटरी बनकर पन्द्रह हजार रुपये ऐंठ लिये थे।

घटना इस प्रकार है—रात के लगभग नौ बजे थे। सेठ दिलसुख राय अपने मुनीम के साथ बैठे हुए बही-खातों की जाँच कर रहे थे। तभी सेठजी के नौकर ने आकर उन्हें बताया कि कोई साहब उनसे मिलना चाहते हैं। सेठजी ने मुनीम को उन लोगों के साथ बातें करने के लिए भेजा। मुनीमजी उन लोगों से बातें करने गये और लौटकर बताया कि गवर्नर साहब के सेक्रेटरी आये थे। उनके साथ उनका एक बाबू और एक चपरासी भी था। वे लोग उसी समय सेठजी से मिलना चाहते थे। इतना सुनकर सेठजी स्वयं उनसे मिलने के लिए चल पड़े और आदर सहित उन्हें अन्दर लिवा लाये। उन्हें बड़े सम्मान के साथ बैठाया गया। हाथ जोड़ते हुए सेठजी ने सेक्रेटरी साहब से आने का कारण पूछा। इस पर सेक्रेटरी साहब ने बताया, "लड़ाई में सरकार के पास धन की कमी हो गई है, इसलिए बड़े-बड़े धनवान लोगों से सरकार चन्दा माँग रही है। मैं इसीलिए गवर्नर साहब की ओर से आपके पास चन्दा माँगने आया हूँ।"

"आपको कष्ट करने की क्या आवश्यकता थी, मुझे बता दिया होता; मैं स्वयं आपकी सेवा में हाजिर हो जाता" सेठजी बोले।

"मैं आपके पास आया या आप मेरे पास आये एक ही बात है, इसमें क्या अन्तर पड़ता है।"

"यह तो आपका बड़प्पन है हजूर, जो आपने मेरे घर आने की कृपा की। कृपया बताएँ कि मुझे कितनी सेवा करनी होगी?"

"सेठजी चन्दा गवर्नर साहब ने स्वयं लोगों का इन्कम टैक्स देखकर निश्चित किया है, अतः आपके नाम पर पन्द्रह हजार रुपये लिखे गये हैं।"

रकम कुछ बड़ी थी। सेठजी को मायूस जैसा देखकर सेक्रेटरी साहब ने अपना दूसरा दाँव फेंका—"आप कोई मामूली आदमी नहीं हैं। आप जो आयकर देते हैं, उसको देखते हुए इतनी धनराशि कोई अधिक नहीं है। महामहिम गवर्नर आपसे अत्यधिक प्रसन्न हैं, वह अगले वर्ष आपको राय-बहादुर का खिताब देने वाले हैं।"

रायबहादुर खिताब का नाम सुनते ही सेठ दिलसुखराय की खुशी का कोई ठिकाना न रहा। मौके का फायदा उठाते हुए सेक्रेटरी साहब फिर बोले, "अगले वर्ष जिन लोगों को यह पदवी दी जा रही है, उस सूची में आपका नाम भी है, समझ लीजिए आप रायबहादुर बन ही गये हैं। अब तो केवल औपचारिकता पूरी होनी है।"

रायबहादुर की उपाधि मिलना उन दिनों बड़े सम्मान की बात समझी जाती थी। इस प्रकार अपने आप इतना बड़ा सम्मान मिलने की बात सुन-कर सेठजी कठिनाई से अपनी खुशी को दबा पा रहे थे, वरना उनके मन में खुशी के लड्डू फूट रहे थे। इस समय न मालूम वह क्या-क्या सोच रहे थे। इधर सेक्रेटरी साहब और उनके साथी भी सेठजी के मन की बात को समझ रहे थे और मन-ही-मन हँस भी रहे थे। उन्होंने सेठ की खूब तारीफ करते हुए उसे इस बात का पूरा विश्वास दिला दिया कि अब उनकी इस उपाधि को कोई नहीं छीन सकता। बातों ही बातों में सेठजी ने पन्द्रह हजार रुपये का चन्दा दे दिया। सेक्रेटरी साहब रसीद-बुक साथ ही लाये थे। साथ आये बाबू ने रसीद बनाकर सेठजी को दे दी। सेक्रेटरी साहब अपने बाबू और चपरासी के साथ चलते बने। सेठजी बेचारे रायबहादुर की पदवी मिलनेवाली है, इस खुशी में पागल हुए जा रहे थे।

थोड़ी ही देर में नौकर ने सेठजी को पुलिस के आने की सूचना दी।

ही एक सी० आई० डी० इन्सपेक्टर चार-पाँच सिपाहियों के साथ अन्दर आया। आते ही उसने सेठजी से प्रश्न किया, "अभी आपके यहाँ कौन आया था ?"

"गवर्नर साहब के सेक्रेटरी आये थे, चन्दा माँगने।" सेठजी बोले।

"उनके साथ और कौन-कौन थे ?"

"उनके साथ उनका एक क्लर्क तथा एक चपरासी था।"

इन्सपेक्टर ने उनके रूप-रंग, आकार आदि के बारे में पूछा। सेठजी ने पूरा हुलिया बता दिया। इस पर इन्सपेक्टर ने पूछा, "क्या आपने उन्हें चन्दा दे दिया ?"

"हाँ साहब !" सेठजी ने कहा।

"कितना ?"

"पन्द्रह हजार रुपये।"

तब इन्सपेक्टर ने बताया, "आप ठगे गये हैं सेठजी, आपके साथ एक बहुत बड़ा धोखा हुआ है। वे तीनों सेक्रेटरी, बाबू या क्लर्क कुछ नहीं थे। वे चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह और राजगुरु थे।"

सेठजी को काटो तो खून नहीं; उन्हें सारी धरती घूमती हुई दिखाई देने लगी, अपने कानों पर सहसा विश्वास ही नहीं हुआ। उन्हें बेबात पन्द्रह हजार रुपयों का चूना लग गया था। उन्हें मुनीम के ऊपर क्रोध तथा स्वयं अपनी मूर्खता पर रोना आ रहा था।

गाडोदिया स्टोर डकैती :

भगतसिंह की गिरफ्तारी के बाद भी दल के कामों को आजाद निरन्तर चलाते रहे। दल के कुछ कार्यकर्ता अभी भी काम कर रहे थे, किन्तु दल के अनेक प्रमुख सदस्य गिरफ्तार हो चुके थे। ऐसे समय में कुछ [illegible] आजाद के [illegible] नहीं था। [illegible] की पूर्ति के लिए 6 जून, 1930 के दिन दिल्ली की एक मोटर कम्पनी के [illegible] हुआ। यह डकैती गाडोदिया स्टोर डकैती के नाम से जानी जाती है। इस डकैती का नेतृत्व चन्द्रशेखर आजाद ने स्वयं किया था। उनके अतिरिक्त इसमें दल के अन्य सदस्य, [illegible] तथा विश्वनाथ [illegible] भी इसके [illegible]

थे। इस डकैती में तेरह हजार रुपये हाथ लगे थे।

इस डकैती का सुखद आश्चर्यजनक पहलू यह है कि इस स्टोर के मालिक को जब यह ज्ञात हुआ कि डकैती क्रान्तिकारियों द्वारा डाली गई तो उसने खोज-बीन के लिए इस मामले को फिर आगे नहीं बढ़ाया। इस डकैती का पता लाहौर काण्ड में मुखबिर बने दल के ही सदस्य कैलाशपति के बयानों के बाद चला।

## काकोरी काण्ड :

हर सम्भव प्रयत्न करने पर भी क्रांतिकारी दल के पास धन की रहती थी। इससे दल के कार्यक्रम सुचारु रूप से नहीं चल सकते थे। दल ने कोई बड़ा कदम उठाने का निश्चय किया। इस विषय में पं० रामप्रसाद बिस्मिल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—

इस समय समिति की आर्थिक स्थिति बड़ी खराब थी।"" का प्रबन्ध करना नितान्त आवश्यकता थी। किन्तु वह हो कैसे ? दान देता न था, कर्ज भी न मिलता था और कोई उपाय न देख डाका डालना तय हुआ। किन्तु किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति पर डाका डालना अभीष्ट न था। सोचा यदि लूटना है तो सरकारी माल क्यों न लूटा जाए। इस उधेड़बुन में एक दिन मैं रेल में जा रहा था। गार्ड के डिब्बे के पास की गाड़ी में बैठा था। स्टेशन मास्टर एक थैली लाया और गार्ड के डिब्बे में डाल गया। कुछ खटपट की आवाज हुई और मैंने उतरकर देखा कि एक लोहे का सन्दूक रखा है। मैंने विचार किया कि इसी में थैली डाली गई होगी। अगले स्टेशन पर उसमें थैली डालते भी देखा। अनुमान किया कि डिब्बे में लोहे का सन्दूक जंजीरों से बंधा रहता होगा, ताला पड़ा रहता होगा, आवश्यकता होने पर ताला खोलकर उतार लेते होंगे। इसके थोड़े दिनों बाद लखनऊ स्टेशन पर जाने का अवसर प्राप्त हुआ। देखा एक गाड़ी में से कुली लोहे के आमदनी वाले सन्दूक उतार रहे हैं। निरीक्षण करने से मालूम हुआ कि उनमें जंजीर-ताला कुछ नहीं पड़ता, यों ही रखे जाते हैं। उसी समय निश्चय किया कि इसी पर हाथ मारूँगा। उसी समय ...। हल्के स्थान पर जाकर टाइम टेबुल देखकर अनुमान किया

8 सहारनपुर से गाड़ी चलती है, लखनऊ तक अवश्य रोज दस हजार रुपये की आमदनी होती होगी।"

स्पष्ट है कि यह योजना पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल के मस्तिष्क की उपज थी। अतः इसके लिए 9 अगस्त, 1925 का दिन निश्चित किया गया। इसके लिए दल के दस युवकों का चुनाव किया गया—पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खां, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, चन्द्रशेखर आज़ाद, मन्मथनाथ गुप्त, बनवारीलाल, शचीन्द्रनाथ बख्शी, मुरारीलाल, केशव चक्रवर्ती तथा मुकन्दीलाल।

8 डाउन पैसेंजर गाड़ी सहारनपुर से चलती थी तथा इसमे सभी स्टेशनों से राजस्व इकट्ठा होकर लखनऊ पहुँचता था। अतः निश्चित समय पर ये वीर अपने अभियान पर चल पड़े। इस विषय मे मन्मथनाथ गुप्त लिखते हैं—"हम लोग 9 तारीख को सन्ध्या समय शाहजहाँपुर से हथियार, छेनी, घन, हथौड़े आदि से लैस होकर गाड़ी पर सवार हो गए। इस गाड़ी मे रेल के खज़ाने के अतिरिक्त कोई और खज़ाना भी जा रहा था जिसके साथ बन्दूकों का पहरा था। इसके अतिरिक्त गाड़ी मे कई और बन्दूकें थीं। कुछ पल्टनियाँ गोरे भी हथियार सहित मौजूद थे। जिसमें शायद एक मेजर भी ऊँचे कलास मे था। हमारे स्काउट ने खबर दी, तब हम असमंजस में पड़ गए। श्री अशफाक ने शायद अपना निषेध फिर से लोगों के मस्तिष्क मे प्रविष्ट कराने की चेष्टा की, किन्तु हम लोग तुल चुके थे। हम इतने अग्रसर हो चुके थे कि हमारा लौटना कठिन था और हम लौटना चाहते भी नही थे। एक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि यो तो अशफाक मना कर रहे थे, किन्तु जब उन्होंने देखा कि उनकी एक न चली और हम लोग काम करने पर तुले हैं, तो उन्होंने कमर कस ली। उनकी सुन्दर बड़ी-बड़ी आँखें तेज से दीप्त हो उठीं और अपना पार्ट अदा करने के लिए अत्यन्त साहस तथा हर्षपूर्वक प्रस्तुत हो गए।"

श्री अशफाकउल्ला, राजेन्द्र लाहिड़ी तथा शचीन्द्रनाथ बख्शी द्वितीय श्रेणी के डिब्बे मे यात्रा कर रहे थे, अन्य लोग तृतीय श्रेणी मे बैठे थे। कुछ सदस्यों को द्वितीय श्रेणी के डिब्बों मे एक विशेष उद्देश्य से बैठाया गया था। गाड़ी को काकोरी मे जंजीर खींचकर रोकना था, किन्तु तृतीय श्रेणी

के डिब्बों की जंजीरें प्रायः खराब रहती थीं।

इस दल के पास चार नये माउजर पिस्तौल, प्रत्येक के लिए कुछ अधिक कारतूस तथा अन्य छोटे-मोटे हथियार थे। काकोरी स्टेशन से एक छोटा-सा गांव है। जब यह जगह थोड़ी ही दूर रह गई तो जंजीर खींचकर उसे रोक दिया गया। गाड़ी के रुकने पर यात्री हटकर गार्ड के डिब्बे के पास जाने लगे, कुछ खिड़कियों से सिर बाहर निकाले और फिर गार्ड भी नीचे उतर आया और उस डिब्बे की ओर गया, जहाँ से जंजीर खींची गई थी। क्रान्तिकारी तुरन्त डिब्बों से आए। उन्होंने यात्रियों को डिब्बों में चढ़ जाने का आदेश दिया, गार्ड को जमीन पर लेट जाने को कहा गया, ताकि उसके बिना गाड़ी न जा सके। दो-दो व्यक्ति पटरी के दोनों ओर कुछ दूरी पर खड़े हो गए। उनके हाथों में माउजर पिस्तौलें थीं, जो एक-एक हजार गज तक मार कर सकती थी। उन्हें रुक-रुककर आकाश की ओर हवाई फायर करने को कहा गया था, किन्तु एक युवक ने मूर्खता से सामने की ओर गोली चला दी। वह गोली एक यात्री का काम तमाम कर गई। वह व्यक्ति सम्भवतः महिला बोगी में बैठी हुई अपनी पत्नी को सान्त्वना देने जा रहा था।

दल के शेष सदस्य गार्ड के डिब्बे में चढ़ गए। लोहे का सन्दूक बाहर उतार लिया गया। सन्दूक तोड़ डाला गया, उसमें निकले थैलों की चादरों से गठरी बना ली गई। इसी समय लखनऊ की ओर से कोई दूसरी मेल या एक्सप्रेस गाड़ी भी आ रही थी। इससे क्रान्तिकारियों को कुछ शंका हुई कि वह कहीं रुक न जाए और उसमें कुछ सशस्त्र लोग न हों। इस घटना का विवरण श्री मन्मथनाथ गुप्त ने इस प्रकार किया है—

"....थैले निकालकर चादर में बाँध लिये गए। इसी समय लखनऊ की ओर से कोई मेल या एक्सप्रेस आ रहा था। वह गाड़ी बड़ी जोर से गुजरती हुई चली आ रही थी। हमारे दिल धड़क रहे थे। हम सोचते थे कि कहीं यह गाड़ी खड़ी हो गई और इसमें कुछ लोग हथियारबन्द निकल आए, तो हममें से दो-चार अवश्य ढेर हो जाएँगे। खैर गाड़ी किसी तरह निकल गई। जब गाड़ी हमारे निकट से जा रही थी, तो हमने बन्दूकें जरा ... जब गाड़ी चली गई, तो हम लोगों ने अपना कार्य प्रारम्भ

कर दिया। हम लोगों ने बहुत शीघ्र शायद दस मिनट से भी कम समय में यह सब काम समाप्त कर दिया और थैलों को लेकर झाड़ियों की ओर चले गए।"

इस लूट के बाद क्रान्तिकारी लखनऊ की ओर चले गए। रास्ते में रुपये निकालकर चमड़े के थैलों को बरसात के पानी में डाल दिया गया और फिर सभी लखनऊ पहुँच गए। इस डकैती में युवकों के इस दल को किसी प्रकार के विरोध का सामना नहीं करना पड़ा। जबकि गाड़ी में चौदह व्यक्ति ऐसे थे, जिनके पास हथियार भी थे। दो सशस्त्र गोरे सैनिक भी थे। गाड़ी का ड्राइवर तथा इन्जीनियर बहुत अधिक भयभीत हो गए थे। ड्राइवर इन्जिन में लेट गया था और इन्जीनियर डरकर शौचालय में जा छिपा था। यात्रियों से पहले ही कह दिया गया था कि वे निश्चिन्त रहें, उन्हें कोई कुछ नहीं कहेगा; केवल सरकारी खजाना लूटा जाएगा। अतः वे शान्ति से बैठे रहे। गाड़ी में बैठे लोगों ने यह समझ लिया था कि गाड़ी को बहुत अधिक लोगों ने घेर लिया है, जबकि यह काम केवल दस युवकों का था, जिनमें से अधिकतर सदस्यों की संख्या बाईस वर्ष के आसपास थी। हाँ, इन सभी युवकों का शरीर स्वस्थ तथा सुदृढ़ अवश्य था।

इस डकैती की सफलता से एक ओर जहाँ दल को कर्जों से मुक्ति मिली, वहीं दूसरी ओर युवकों का साहस भी बढ़ गया। साथ ही नये हथियार भी खरीदे गए और आगे की योजना भी बनने लगी।

## गिरफ्तारियों का सिलसिला :

काकोरी कांड सरकार के लिए खुली चेतावनी के समान था। शीघ्र ही पुलिस सक्रिय हो गई। जगह-जगह छापे मारे जाने लगे, तलाशियाँ ली जाने लगीं। गुप्तचर विभाग भी अपने स्तर से इनकी खोज में जुट गया। शीघ्र ही चालीस व्यक्ति गिरफ्तार कर लिये गए, जबकि डकैती में केवल दस ही लोगों ने भाग लिया था। ऐसे लोगों को भी गिरफ्तार कर लिया गया, जिनका इस मामले में कोई सम्बन्ध नहीं था। इस प्रकार के लोगों को बाद में छोड़ दिया गया।

शाहजहाँपुर के बनारसीलाल तथा इन्दुभूषण मित्र तथा कानपुर के

गोपीमोहन भी गिरफ्तार किये गए थे, किन्तु इनमें से प्रथम दो मु
मुखबिर बन गए तथा गोपीमोहन साहा ने सरकारी गवाह बनना स्वीका
कर लिया। इस डकैती में भाग लेनेवाला बनवारीलाल भी इकबाली गव
बन गया। इन लोगों ने पुलिस को सब-कुछ बता दिया, केवल बनारस केन्द्र
का कोई भी मुखबिर न मिल सका, अतः इस केन्द्र के बारे में पुलिस कुछ भी
पता न लगा सकी।

इन चारों को छोड़कर शेष चौबीस व्यक्ति अभियुक्त सिद्ध किये गए।
इक्कीस गिरफ्तार कर लिये गए तथा अशफाकउल्ला खाँ, चन्द्रशेखर आज़ाद
और शचीन्द्र बक्शी पुलिस के हाथ नहीं आए। इन्हें फरार घोषित कर दिया
गया।

बाद में दामोदरस्वरूप सेठ गम्भीर रूप से अस्वस्थ होने के कारण छो
दिये गए। मथुरा-आगरा केन्द्र के शिवचरणलाल तथा उरई-कानपुर केन्द्र
वीरभद्र तिवारी पर से रहस्यमय अज्ञात कारणों से मुकदमा उठा लि
गया।

## मुकदमा :

शेष गिरफ्तार अभियुक्तों पर निम्नलिखित अभियोगों पर मुकदमा
चला—

1. धारा 121 ब्रिटेन के सम्राट् के विरुद्ध युद्ध की घोषणा।
2. धारा 120 अराजनैतिक षड्यन्त्र।
3. धारा 369 कत्ल एवं डकैती।
4. धारा 302 कत्ल।

सजाएँ :

काकोरी काण्ड के इन दोनों मुकदमों में अभियुक्तों को निम्नलिखित सजाएँ मिलीं—

मृत्युदण्ड—पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल, ठाकुर रोशनसिंह, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी तथा अशफाकउल्ला खां।

कालापानी—शचीन्द्रनाथ सान्याल तथा शचीन्द्र बक्शी।

चौदह वर्ष की कैद—मन्मथनाथ गुप्त।

दस वर्ष की कैद—योगेशचन्द्र चटर्जी, मुकन्दीलाल, गोविन्दचरण कार, राजकुमारसिंह तथा रामकृष्ण खत्री।

सात वर्ष की कैद—विष्णुशरण दुब्लिश और सुरेश भट्टाचार्य।

पाँच वर्ष की कैद—भूपेन्द्रनाथ सान्याल, प्रेमकृष्ण खन्ना तथा रामदुलारे द्विवेदी।

चार वर्ष की कैद—प्रणवेश चटर्जी।

यद्यपि बनवारीलाल इकबाली गवाह बन गया था, फिर भी वह सजा पाने से बच नहीं सका। अदालत ने उसे भी पाँच वर्ष की सजा दी।

मन्मथनाथ गुप्त, योगेशचन्द्र चटर्जी, मुकन्दीलाल, गोविन्दचरण कार, विष्णुशरण दुब्लिश तथा सुरेश भट्टाचार्य के विरुद्ध सरकार ने फिर अपील की। इन ६ अभियुक्तों में से योगेशचन्द्र चटर्जी, मुकन्दीलाल तथा गोविन्दचरण कार को पहले दस वर्ष की कैद की सजा मिली थी, बाद में इनकी सजा भी बढ़ाकर कालेपानी में बदल दी गई तथा सात साल कैद की सजा पानेवाले विष्णुशरण दुब्लिश और सुरेश भट्टाचार्य की सजा बढ़ाकर दस वर्ष कर दी गई। उम्र कम होने के कारण मन्मथनाथ गुप्त की सजा पूर्ववत् रही।

परन्तु परिणाम शून्य रहा। अन्ततः अंग्रेजी सरकार ने अपनी क्रूरता का परिचय दे ही दिया; 17 दिसम्बर, 1927 को राजेन्द्र लाहिड़ी को गोंडा जेल में तथा 19 दिसम्बर को रामप्रसाद बिस्मिल को गोरखपुर जेल में, इसी दिन अशफ़ाकउल्ला खां को फ़ैजाबाद जेल में और 18 दिसम्बर को इलाहाबाद जेल में ठा० रोशनसिंह को फांसी दे दी गई।

इस प्रकार यह दल छिन्न-भिन्न हो गया। केवल चन्द्रशेखर आज़ाद ही पुलिस के हाथ नहीं आ सके। इसके साथ ही उनके क्रान्तिकारी जीवन का पूर्वार्द्ध समाप्त हो गया।

## चतुर्थ अध्याय

# मध्यान्तर काल

काकोरी काण्ड के बाद चन्द्रशेखर आजाद ही ऐसे व्यक्ति थे, जिन्हें खास प्रयत्न करने पर भी पुलिस गिरफ्तार नहीं कर सकी। काकोरी काण्ड के फैसले तक दल के लोगों को भी मालूम नहीं था कि आजाद कहाँ है। श्री मन्मथनाथ गुप्त के अनुसार इस काण्ड के बाद वह दल के लोगों से अपने घर जाने के लिए कहकर गए थे, किन्तु दल के लोगों को ही मालूम नहीं था कि उनका घर उन्नाव था अथवा भाभरा।

इस काण्ड में उनके सभी साथी गिरफ्तार हो चुके थे। किन्तु आजाद को खोजने के लिए पुलिस ने कुएँ, तालाब आदि भी छान मारे। इस विषय में डॉ॰ भगवानदास माहौर ने लिखा है—

"प्रबल पराक्रम अंग्रेज सरकार ने उन्हें गिरफ्तार करने की चेष्टा में कोई कसर उठा न रखी। आजाद पर कई हजार रुपयों का इनाम घोषित हो चुका था। जैसा कि कहते हैं; सारे कुओं में खोज हो चुकी थी, नदियों में गोता लगाया गया और खोहों में तलाशा गया। पर आजाद रुद्रनारायण के साथ परम शान्ति में निवास कर रहे थे।"

इस समय उनका निवास स्थान झाँसी और उसके आस-पास का क्षेत्र ही था। इन दिनों झाँसी स्थित दल का केन्द्र ही उनके छिपने की जगह थी। ऐसी स्थिति में कुछ दिनों तक शान्त बने रहना आवश्यक था। काकोरी काण्ड के बाद से भगतसिंह के साथ नये दल के संगठन तक का समय आजाद के क्रान्तिकारी जीवन का मध्यान्तर काल कहा जा सकता है। इस काल में उनकी निम्नलिखित गतिविधियाँ रहीं।

झाँसी में :

फरारी की अवस्था में सर्वप्रथम वह झाँसी पहुँचे। यहाँ उन्होंने मोटर ड्राइविंग तथा मैकेनिक का काम सीखा और बुन्देलखण्ड मोटर कम्पनी में काम किया। यहाँ काम करते समय एक बार उनके साथ एक दुर्घटना भी हो गई, एक कार चालू नहीं हो रही थी, कोई भी व्यक्ति उसका हैंडिल नहीं घुमा पा रहा था। आज़ाद ने इसे चालू करने के लिए इतनी ज़ोर से हैण्डिल घुमाया कि उनके हाथ की हड्डी उखड़ गई। उन्हें तुरन्त अस्पताल ले जाया गया। इसका ऑपरेशन करने के लिए क्लोरोफार्म सुंघाकर बेहोश करना आवश्यक था, किन्तु डाक्टरों की इस राय से आज़ाद घबरा गए, क्योंकि उन्होंने सुन रखा था कि बेहोशी की हालत में कभी-कभी व्यक्ति अपनी गोपनीय बातें भी बता देता है। अतः आज़ाद बिना बेहोश हुए ही ऑपरेशन कराने को तैयार हो गए, किन्तु डाक्टरों ने उनकी यह बात नहीं मानी। आज़ाद ऑपरेशन-टेबल से उतर पड़े। तब उनके मित्रों ने किसी तरह बेहोश किए जाने के लिए राजी किया।

सम्भवतः बेहोशी की हालत में उनके मुँह से कोई ऐसी बात निकल गई, जिससे उनके क्रान्तिकारी होने का पता डाक्टर को लग गया था। ऑपरेशन के बाद डाक्टर उनके साथ बड़े सम्मान से बातें कर रहा था। अस्पताल से छुट्टी देते समय डाक्टर ने उनसे कहा—"अब आपका हाथ ठीक हो गया है। कोई चिन्ता न करिए। मुझे आशा है, आप अपने हाथों का इस्तेमाल देश के लिए वीरता के साथ करेंगे।"

झाँसी में आज़ाद मास्टर रुद्रनारायण के छोटे भाई बनकर रहे थे। डा० माहौर के अनुसार पुलिस ने कई बार रुद्रनारायण के घर पर छापे भी मारे थे, आज़ाद को सामने देखकर भी वे उन्हें गिरफ्तार नहीं कर पाये, क्योंकि उनके साथ आज़ाद का व्यवहार इस प्रकार का होता था कि पुलिस कल्पना ही नहीं कर सकती थी कि वही आज़ाद होंगे और पुलिस के पास उनका कोई फोटोग्राफ था नहीं, जो उन्हें पहचान पाती—.

"बार-बार रुद्रनारायण के घर की तलाशी हुई, पर बिल्कुल मुँह पर मे रहने वाले आज़ाद गिरफ्तार नहीं किए जा सके। आज़ाद आये हुए पुलिस वालों और उनके अफसरों से मज़ाक करते रहे और बदमाश आज़ाद की

चालाकियों के विषय में उनकी कहानियाँ सुनते रहे। जब पुलिस वाले चले जाते, तो आज़ाद हँसकर हमसे कहते—ये साले मुझे हौवा और जादूगर बनाये हुए है, ये बड़े मामूली लोग हैं। ये एक मजिस्ट्रेट के सामने गुलाम की तरह खड़े रहते हैं। अब उस कुमुदीसिंह को लो, जो यह कह रहा था—क्रान्तिकारी लोग बड़े परिवारों में से होते हैं। अब अशफाकउल्ला को लो, तो उसे डिप्टी मजिस्ट्रेट समझा जा सकता है।"

झाँसी में रहकर मोटर कम्पनी के कार्य के अतिरिक्त वह जंगलों में जाकर निशाना लगाने का अभ्यास करते रहते थे। इन दिनों भगवानदास माहौर से निरन्तर उनका सम्पर्क बना रहा।

### साधु वेश में :

इसके बाद आज़ाद धीमरपुर गाँव चले गए और गाँव के बाहर एक कुटिया बनाकर साधुवेश में रहने लगे। उन्हें ऐसा करने का परामर्श रुद्रनारायण ने ही दिया था। यहाँ वह लोगों को रामचरित मानस की चौपाइयाँ सुनाते थे। आरम्भ में लोग उन्हें भोजन का सामान कुटिया में ही दे जाते थे, किन्तु बाद में आज़ाद श्रद्धालु लोगों के घर ही जाकर भोजन करने लगे थे। यहाँ उन्होंने छोटे बच्चों को पढ़ाने के लिए एक पाठशाला भी खोली। पहले विद्यालय खुले आसमान के नीचे लगता था, परन्तु बाद में गाँव के ही एक धनवान व्यक्ति ठाकुर मलखानसिंह ने इस कार्य के लिए अपने घर की बैठक दे दी थी। बाद में आज़ाद, जो उन दिनों ब्रह्मचारी के नाम से जाने जाते थे, ठाकुर मलखानसिंह के ही घर में रहने लगे, क्योंकि मलखानसिंह तथा उनके तीन भाई नौकरी करते थे और घर से बाहर ही रहते थे। पुरुष सदस्य के घर में रहने से घर की सुरक्षा हो जाती थी। आज़ाद वस्तुतः घर के सदस्य जैसे ही बन गए।

### नरेशों के सम्पर्क में :

इस अवधि में उनका कई राजाओं एवं ज़मींदारों से भी सम्पर्क हुआ था। एक बार ओरछा के राजा अपने दीवान आदि के साथ जंगल में शिकार खेलने के लिए जा रहे थे, तब उनकी साधुवेशधारी आज़ाद से भेंट

हुई थी। राजा साहब को शिकार के लिए जाते देख आजाद ने भी उनके साथ चलने की इच्छा व्यक्त की। राजा को इससे बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक साधु शिकार करने की इच्छा व्यक्त कर रहा था। इस पर आज़ाद ने अपने-आपको केवल एक पुजारी बताया था। अतः एक बन्दूक उन्हें भी दे दी गई। इस पर राजा साहब तथा उनके कर्मचारियों को हँसी भी आई। शिकार करते समय सभी लोग अपने-अपने स्थानों पर जम गए। एक तगड़ा बनैला सुअर था। राजा तथा उसके सभी कर्मचारियों ने उस पर गोलियाँ चलाईं, परन्तु सभी के निशाने चूक गए, फिर सबके अन्त में आज़ाद ने निशाना लगाया, उनकी पहली ही गोली से सुअर धराशायी हो गया। इस घटना के बाद राजा साहब को पक्का विश्वास हो गया कि वह साधु या पुजारी न होकर कोई क्रान्तिकारी है। राजा साहब स्वयं भी स्वतन्त्रता सेनानियों से सहानुभूति रखते थे। यह परिचय मित्रता में बदल गया। काफी दिनों बाद आजाद ने उन्हें अपनी वास्तविकता बतायी।

एक बार बड़े लाट साहब ओरछा आने वाले थे। आजाद ने राजा के पास सूचना भिजवाई कि इस अवसर पर वह लाट साहब का स्वागत अपने ढंग से करना चाहते थे। राजा साहब ने आजाद से निवेदन किया था कि लाट साहब राज्य के अतिथि बनकर आ रहे थे, अतः वह (आजाद) ऐसा कुछ न करें।

यह भी कहा जाता है कि बाद में यही राजा साहब अपने एक मुँहलगे नौकर के बहकावे में आकर आजाद को पकड़वाने के लिए सहमत हो गए थे। जब उनके तथा इस नौकर के बीच इस योजना पर बात हो रही थी, आजाद उस समय वहीं पर सो रहे थे। राजा को कोई शक न हो, इसलिए वह जोर-जोर से खर्राटे ले रहे थे। इसके तुरन्त बाद मौका मिलते ही वह वहाँ से भाग गए।

मास्टर रुद्रनारायण ने ही आजाद को साधुवेश में रहने का परामर्श दिया था। उन्हीं के सहयोग से आजाद का सम्पर्क राजा साहब खानियाधाना से भी हुआ था। आजाद पहले उनके यहाँ एक अच्छे मोटर-मैकेनिक के रूप में गए थे। बाद में राजा साहब को उन्होंने बताया था कि वह एक क्रान्तिकारी हैं। मार्च, 1928 में राजा साहब ने उन्हें यह आश्वासन भी

...या था कि वह दल के कार्यों के लिए कुछ हथियार भी देंगे।

इस समय भगवानदास माहौर भी आज़ाद के साथ ही रहते थे। राजा ...रकारी सिंहदेव के आज़ाद परके विश्वासपात्र बन गए थे। यहाँ रह-...र वह ड्राइविंग तथा निशाना लगाने का अभ्यास भी करते रहते थे। ...जा साहब उनके साथ शिकार खेलने भी जाते रहते थे। राजा साहब की ...नके साथ इस घनिष्ठता से उनके कर्मचारी तथा रिश्तेदार ईर्ष्या करने ...गे, अतः आज़ाद ने खनियाधाना छोड़ दिया।

## ...म्बई में :

कुछ पुस्तकों में वर्णन मिलता है कि आज़ाद बुन्देलखण्ड के बाद फिर ...म्बई चले गए थे और वहाँ उन्होंने बन्दरगाह में कुली का काम किया। ...नभर जहाज़ों में माल चढ़ाने या उतारने के काम करते थे, जिसके लिए ...म को नौ आने मज़दूरी मिलती थी। रात में बारह बजे तक चित्रघर ...ाते तथा फिर किसी गोदाम में या फुटपाथ पर सो जाते थे। यह क्रम ...गभग डेढ़ वर्ष तक चला।

यहाँ उन्होंने वीर सावरकर से भी भेंट की थी। सावरकर ने उन्हें ...न्तिपथ की कठिनाइयों से अवगत कराया और इनसे भयभीत न होने ...ा परामर्श दिया, इससे आज़ाद को एक नई प्रेरणा मिली और वह नये ...रे से दल का संगठन करने के लिए बम्बई से उत्तर की ओर चल पड़े।

पंचम अध्याय

# नई सुबह : दल का पुनर्गठन

काकोरी काण्ड 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' के लिए अभिशाप सिद्ध हुआ। दल के सभी प्रमुख सदस्य पकड़े गए। उनमें चार को फाँसी की सजा सुनाई गई तथा शेष सदस्यों को लम्बी कैद की सजाएँ हुईं। केवल चन्द्रशेखर आजाद ही बचे रहे। उनके सामने दल को पुनर्गठित करने की समस्या थी, वह इस कार्य के लिए जीजान से जुट गए। सौभाग्य से उन्हें इसके लिए भगतसिंह जैसे साथी मिल गए। यहीं से उनके क्रान्तिकारी जीवन का उत्तरार्द्ध प्रारम्भ होता है।

## भगतसिंह से भेंट :

दल के पुनर्गठन के सिलसिले में आजाद कानपुर पहुँचे। यहाँ वह प्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी, पत्रकार एवं समाजसुधारक गणेशशंकर विद्यार्थी के पास ठहरे। भगतसिंह भी यहाँ आये हुए थे। यहीं इन दोनों की पहली बार भेंट हुई। इस भेंट का वर्णन करते हुए श्री यशपाल ने 'सिंहावलोकन' में लिखा है—

"आजाद ज्यों ही अन्दर से बाहर वाले कमरे में आए, उन्होंने विद्यार्थीजी के निकट एक अपरिचित, किन्तु तेजस्वी नवयुवक को बैठे देखा। उसे देखकर आजाद क्षण-भर के लिए ठिठक गए। वह नवयुवक लम्बे कद और छरहरे बदन का था। रंग गोरा था, आँखें छोटी-छोटी थीं। उसके चेहरे पर विलक्षणता का भाव था, उसने सिर के ढीले केशों पर लटकती-सी पगड़ी बाँध रखी थी और उसके शरीर पर कोट और लुंगी थी। आजाद को उसने आकर्षित किया।

"आइए पण्डितजी!" आजाद को संकोच में देखकर विद्यार्थीजी ने

तपाक से कहा।

कार्यसंलग्न नवयुवक ने दृष्टि ऊपर उठाकर देखा। पण्डितजी के रूप में उसे भव्य व्यक्तित्वधारी छबीले नवयुवक के दर्शन हुए।

इसके बाद इन दोनों का परस्पर परिचय हुआ। दोनों के विचार समान थे। दोनों एक-दूसरे से प्रभावित हुए। उनकी यह पहली मुलाकात जीवन भर की मित्रता में बदल गई। यह एक ऐतिहासिक मुलाकात थी। मातृभूमि के दो दीवानों का एक अटूट मिलन था, जिन्होंने भावी इतिहास में भारत की स्वतन्त्रता के लिए कन्धे-से-कन्धा मिलाकर कार्य किया और एक नये इतिहास की रचना की। वीर चन्द्रशेखर आज़ाद के इस जीवन का उत्तरार्द्ध वस्तुतः भगतसिंह के मिलन के बाद ही प्रारम्भ हुआ।

## नया दल : हिन्दुस्तान समाजवादी गणतन्त्र सेना

करने बंगाल गए, तो वे लोग उनका वहाँ रात में रहने का प्रबन्ध भी नहीं कर पाए थे। अतः इनसे सहयोग की आशा छोड़ दी गई।

नये दल के गठन के लिए 8 सितम्बर, 1928 को फिरोजशाह कोटला के किले के खण्डहरों में क्रान्तिकारियों की एक बैठक हुई (यह तिथि विभिन्न पुस्तकों में अलग-अलग है, फिर भी अधिकतर पुस्तकों में यही तिथि है।) इसमें बंगाल को छोड़कर उत्तरी भारत के सभी राज्यों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। भगतसिंह एवं सुखदेव पंजाब राज्य के प्रतिनिधि थे, कुन्दनलाल राजस्थान के, शिव वर्मा, ब्रह्मदत्त मिश्र, जयदेव, विजयकुमार सिन्हा तथा सुरेन्द्र पाण्डे संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) के और फणीन्द्रनाथ घोष एवं मनमोहन बनर्जी बिहार राज्य के प्रतिनिधि थे। कुछ अज्ञात अपरिहार्य कारणों से चन्द्रशेखर आज़ाद इस बैठक में नहीं आ सके, किन्तु भगतसिंह और शिव वर्मा से उन्होंने पहले ही कह दिया था कि बैठक में बहुमत से जो भी निर्णय लिए जाएँगे, वे उन्हें मान्य होंगे।

अभी तक विभिन्न राज्यों के क्रान्तिकारी दलों के अपने अलग-अलग नाम थे। अतः सभी प्रान्तों के दलों को मिलाकर एक अखिल भारतीय नया दल बनाया गया। इस नये संगठन का नाम 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' अर्थात् 'हिन्दुस्तान समाजवादी गणतान्त्रिक सेना' रखा गया। दल के सभी सदस्य नए थे। यों तो चन्द्रशेखर आज़ाद भी युवक ही थे, किन्तु इससे पूर्व वह 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' में रामप्रसाद बिस्मिल आदि के साथ कार्य कर चुके थे, जिससे उन्हें हथियारों को चलाने आदि का अच्छा अनुभव था, जबकि अन्य नये लोग इस मामले में अनुभवहीन थे, अतः 'हिन्दुस्तान समाजवादी गणतन्त्र सेना' का प्रधान सेनापति-कमाण्डर इन चीफ उन्हीं को बनाया गया।

### नये दल की केन्द्रीय समिति :

इस नये संगठन की एक केन्द्रीय समिति बनायी गई, जिसमें प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधि थे, जिनके नाम निम्नलिखित हैं।

1. भगतसिंह (पंजाब)
2. चन्द्रशेखर आज़ाद (संयुक्त प्रान्त

3 सुखदेव (पंजाब)
4. शिव वर्मा (संयुक्त प्रान्त)
5 विजय कुमार (संयुक्त प्रान्त)
6 फणीन्द्रनाथ घोष (बिहार)
7 कुन्दन लाल (राजस्थान)

नये दल के गठन में यह स्पष्ट कर दिया गया कि दल पर किसी एक व्यक्ति का नियन्त्रण नहीं रहेगा। दल की सभी सम्पत्ति केन्द्रीय समिति के अधिकार में रहेगी। जो भी कार्य किया जाएगा, उस पर पहले केन्द्रीय समिति विचार करेगी। सभी निर्णय बहुमत के आधार पर लिए जाएँगे।

इस नये दल के नाम में समाजवादी शब्द विशेष अभिप्राय में जोड़ा गया। जो इस बात का सूचक था कि यह दल मार्क्सवाद के समाजवादी सिद्धान्तों पर आधारित समाज की स्थापना करने के लिए प्रयत्नशील रहेगा और शोषण को मिटाएगा।

इस बैठक में इन बातों पर भी विचार हुआ कि दल सशस्त्र क्रान्ति द्वारा भारत की स्वतन्त्रता के लिए काम करेगा, जिसके लिए धन की आवश्यकता अनिवार्य रूप से होगी। क्योंकि यह एक गुप्त आन्दोलन था, अतः चन्दे से धन संग्रह करना सम्भव नहीं था। इस समस्या के निराकरण के लिए डकैतियाँ डालना तय हुआ, साथ ही यह भी निश्चित हुआ कि डकैतियाँ जहाँ तक हो सरकारी बैंकों, खजानों या डाकघरों में डाली जाएँ। जनता में डकैतियाँ डालने से दल उनकी सहानुभूति से वंचित हो

कर्ता प्रतिनिधि बनाया गया।

इस प्रकार चन्द्रशेखर आज़ाद को इस नये संगठन 'हिन्दुस्तान समाजवादी गणतन्त्र सेना' का अध्यक्ष बनने का गौरव प्राप्त हुआ। यों देखा जाए तो इस संगठन के उद्देश्यों तथा पूर्व संगठन 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' के उद्देश्यों में कोई विशेष अन्तर नहीं था, किन्तु पूर्व दल के नाम से उसके उद्देश्यों का परिचय नहीं मिलता था। इस सम्बन्ध में मन्मथनाथ गुप्त लिखते है—

*"काकोरी युग में समिति का नाम हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन था। यह नाम कम अर्थव्यंजक समझा गया, यानी यह समझा गया कि इस नाम से दल का उद्देश्य पूर्णरूप से व्यक्त नहीं होता। इसलिए इसको और स्पष्ट करना चाहिए, तदनुसार दल का नाम 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन सोशलिस्ट आर्मी' यानी हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक सेना रखा गया। संक्षेप में ऐसा इसलिए हुआ कि साधनों में विकास न होकर क्रान्तिकारी आन्दोलन के ध्येय में ही विकास होता रहा। उसी के अनुसार यह नाम बदल दिया गया। यह परिवर्तन सूचित करता है कि दल के ध्येय में और अधिक विकास हुआ। दल ने समाजवाद और मजदूर वर्ग के अधिनायकत्व को अपना ध्येय घोषित किया।*

## पुलिस से आँखमिचौली :

*काकोरी काण्ड के बाद फरार हो जाने पर आज़ाद लगभग दो वर्ष में अपनी माँ से भी नहीं मिल पाए थे। उनके पिताजी का देहावसान हो चुका था। वृद्धा माँ भी कानपुर में आकर रहने लगी थी। एकमात्र पुत्र के वियोग में वह तड़प रही थी। उन्हें मालूम हो चुका था कि आज़ाद किसी डकैती के बाद फरार हो गए थे। उनके अन्य कई साथी या तो फाँसी की सजा पा चुके थे या उन्हें लम्बी-लम्बी कैद की सजाएँ मिल चुकी थी। पकड़े जाने पर आज़ाद के लिए भी सजा निश्चित थी। एक दिन आज़ाद अपनी माँ से मिलने जा पहुँचे। इतने लम्बे समय बाद माँ-बेटे मिले थे। अभी कुछ ही देर हुई थी कि भगतसिंह तथा सुखदेव भी वहाँ पहुँच गए। भगतसिंह ने बताया कि उनके बारे में पुलिस को पता चल*

गया था। अतः भाग चला जाए, किंतु आज़ाद का तो काम ही खतरों से खेलना था। भरा हुआ पिस्तौल सदा उनके पास रहता था। वह पुलिस का सामना करने को तैयार हो गये। इस पर भगतसिंह ने उन्हें समझाया कि इस प्रकार का साहस उन्हें विपत्ति में डाल देगा. अतः सब भाग खड़े हुए।

इसी प्रकार एक बार वह कानपुर में 'प्रताप' के सम्पादक श्रीयुत गणेशशंकर विद्यार्थीजी के पास बैठे हुए थे। तभी उनको पता लगा कि पुलिस को उनकी यहाँ उपस्थिति के विषय में पता चल गया था। अतः आज़ाद और उनका एक साथी अपनी माँ के निवास-स्थान पर चले गए। वहाँ भोजन करने के बाद दोनों साथी सो गए। इतने में आज़ाद के विद्यार्थीजी के पास से निकलते ही एक पुलिस अधिकारी अपने दलबल के साथ वहाँ पहुँच गया। आज़ाद वहाँ से पहले ही जा चुके थे। किसी ने पुलिस को पता दिया कि आज़ाद अपनी माँ के पास चले गए थे। पुलिस का दल वहीं पहुँच गया। दरवाज़ा अन्दर से बन्द था। पुलिस को बाहर आया देख दोनों साथी जाग पड़े। आज़ाद सामना करने को तैयार हो गये।

दोनों साथियों ने अपनी-अपनी पिस्तौलें निकाल लीं। पुलिस लगातार दरवाज़ा खटखटाए जा रही थी। पुलिस अधिकारी ने दरवाज़ा न खुलते देख दरवाज़ा तोड़ने का आदेश दे दिया। दरवाज़ा तोड़ा जाने लगा। एक किवाड़ के टूटते ही आज़ाद और उनका साथी पुलिस पर गोलियाँ चलाने लगे। जवाब में पुलिस भी गोली चलाने लगी, किंतु दोनों साथी ओट में अपने को बचाते रहे। कई पुलिस वाले घायल हो गए। पुलिस अधिकारी क्रोधित हो गया। उसने अपने सिपाहियों को अन्दर प्रवेश करने का आदेश दे दिया। दरवाज़ा टूट चुका था। कोई-कोई पुलिसवाले अपने हथियारों को ताने अन्दर जाने को तैयार हो गए। इधर आज़ाद और उनके साथी की पिस्तौलें खाली हो चुकी थीं। पुलिसवाले अन्दर घुसते, इससे पहले ही दोनों साथी मकान की छत पर चले गए, वहाँ से दूसरी छत पर कूद पड़े। उस मकान को पुलिस ने घेर लिया। पुलिस गोलियाँ चलाने लगी, दोनों क्रांतिकारियों ने इसका जवाब छत पर रखी ईंटों से दिया।

और सतर्कता का वर्णन किया कि अभी हमें इस विचार को छोड़ना पड़ेगा, इस समाचार ने भगतसिंह के सारे ख्वाब तोड़ दिए। बहुत कोशिशों के बाद बिस्मिल की लिखी एक गजल हाथ लगी।"

बिस्मिल काकोरी काण्ड के नेता थे, अतः फाँसी की सजा सुना दिये जाने के बाद भी उन पर पुलिस का पहरा सबसे अधिक कठोर था। उनके द्वारा बाहर भेजी जानेवाली तथा उनके पास आनेवाली चीजों पर कड़ी निगरानी रखी जाती थी। उनके द्वारा लिखी गई इस गजल को शायद जेल के अधिकारियों ने एक साधारण गजल समझ लिया था; इसमें छिपे गूढ़ार्थ को वे नहीं समझ पाए थे। यह गजल निम्नलिखित है—

मिट गया जब मिटने वाला
फिर सलाम आया तो क्या।
दिल की बरबादी के बाद
उनका पयाम आया तो क्या॥

मिट गईं सारी उम्मीदें
मिट गए सारे खयाल।
उस घड़ी गर नामवर
लेकर पयाम आया तो क्या॥

ऐ दिले नादान मिट जा
अब तू कूचे यार में।
फिर मेरी नाकामियों के
बाद काम आया तो क्या॥

काश अपनी जिन्दगी में
हम वो मंजर देखते।
यरसरे तुरबत कोई
महशर खराम आया तो क्या॥

आखिरी शब दीद के
काबिल थी बिस्मिल की तड़प।
सुबह दम कोई अगर
बाला ए नाम आया तो क्या ॥

गजल की इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि इनके माध्यम से बिस्मिल ने अपने साथियों के पास संदेश भिजवाया था कि इस काण्ड में फाँसी की सजा पाये वीरों को मुक्त कराने के लिए शीघ्र प्रयत्न करें। अन्यथा फाँसी हो जाने पर उन्हें निराशा ही हाथ लगेगी। यह प्रयत्न 1927 के आरम्भ में किये गए थे।

माननी ही पड़ेगी। तुमने मेरा जो अपमान किया है, उसका उत्तर मैं नहीं दूंगा। इसके बाद तुम कभी मुझसे बात न करना।"

भगतसिंह के साथ बम डालने मे बटुकेश्वरदत्त को उनका सहयोगी बनाया गया।

आज़ाद का नाम इसके लिए किसी ने भी प्रस्तुत नहीं किया, क्योंकि सभी सदस्यों के मत में दल के भविष्य के लिए उनका इस प्रकार के मामलों में भाग न लेना ही उचित था।

केन्द्रीय असेम्बली में दो बिल पेश किये गए थे—जन सुरक्षा बिल तथा औद्योगिक विवाद बिल। प्रथम बिल का उद्देश्य राजनीतिक आन्दोलनों को कुचलना तथा दूसरे बिल का मजदूरों को हड़ताल के अधिकार से वंचित करना था। अतः ये बिल विवाद का विषय बन चुके थे। जनता को विश्वास था कि यदि असेम्बली ने इन बिलों को अस्वीकार भी कर दिया तो सरकार वाइसराय के विशेष अधिकार से इन्हें पास कर देगी।

8 अप्रैल, 1929 को असेम्बली में इन दोनों बिलों का निर्णय सुनाया जाना था। अतः भगतसिंह एवं बटुकेश्वरदत्त के लिए असेम्बली के एक मनोनीत सदस्य की सिफारिश पर पास बनाये गए। दोनों ने खाकी कमीज और नेकर पहनी थी। जयदेव कपूर उन्हें असेम्बली में उचित स्थान पर बैठा आये, जहाँ से बम फेंकने में किसी प्रकार की असुविधा न हो और किसी को चोट भी न लगे।

पहले ही दूसरा बम फेंका गया। इससे लोगों के होशो-हवास गुम हो गए सर जार्ज शुस्टर मेज के नीचे जा छिपा। इस हड़बड़ी में टकरा जाने से इसे मामूली चोट भी आई। पूरा हाल नीले धुएँ से भर गया। दोनों ने 'इन्कलाब जिन्दाबाद' तथा 'साम्राज्यवाद का नाश हो' के नारे लगाए तथा पर्चे फेंके, जिनमें लिखा था—

"बहरों को सुनाने के लिए ऊँची आवाज़ की जरूरत होती है। फ्रांस के अराजकतावादी शहीद वेला के ऐसे ही अवसर पर कहे गए इन अमर शब्दों से क्या हम अपने काम का औचित्य सिद्ध कर सकते हैं।

शासन सुधार के नाम पर ब्रिटिश शासन द्वारा पिछले दस वर्षों से हमारे देश का जो अपमान किया गया है, हम उस निन्दनीय कहानी को दुहराना नहीं चाहते। भारतीय राष्ट्रीय नेताओं के साथ किये गए अपमानों का भी उल्लेख नहीं करना चाहते जो इस असेम्बली द्वारा किये गए हैं, जिसे पार्लियामेण्ट कहा जाता है।

हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि कुछ लोग साइमन कमीशन के नाम पर जो जूठे टुकड़े मिलने की सम्भावना है, उनकी आशा लगाए हुए हैं और मिलने वाली ताजी हड्डियों के बँटवारे के लिए झगड़ा तक कर रहे हैं। इसी समय सरकार भी भारतीय जनता पर दमनकारी कानून लादती जा रही है, जैसे जनसुरक्षा बिल तथा औद्योगिक विवाद बिल। इसी के साथ उसने प्रेस सिडीशन बिल को असेम्बली के अगले अधिवेशन के लिए सुरक्षित रख लिया है। श्रमिक नेता जो खुले रूप में अपना कार्य कर रहे थे, उनकी अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार का क्या रुख है।

इन भड़कर उत्तेजक परिस्थितियों में 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक सेना' ने पूर्ण गम्भीरता के साथ अपना दायित्व अनुभव करते हुए अपनी सेना को यह कार्य करने का आदेश दिया है, जिसमें कानून का यह अपमानजनक मज़ाक बन्द हो। विदेशी सरकार की शोषक नौकरशाही चाहे जो करे, किन्तु उसका नंगा रूप जनता के सामने लाना नितान्त आवश्यक है।

... जनता के चुने हुए प्रतिनिधि अपने निर्वाचन क्षेत्रों को लौट जाएँ

और जनता को आने वाली क्रान्ति के लिए तैयार करें। सरकार को य जान लेना चाहिए कि जन सुरक्षा बिल और औद्योगिक विवाद बिल लालाजी की नृशंस हत्या का असहाय भारतीय जनता की ओर से विरोध करते हुए हम इस बात पर जोर देना चाहते हैं, जिसे कि इतिहास ने अनेक बार दुहराया है कि व्यक्ति की हत्या कर देना आसान है, लेकिन तुम विचारों की हत्या नहीं कर सकते। बड़े-बड़े साम्राज्य नष्ट हो गए, किन्तु विचार जीवित रहे। फ्रान्स के बूर्बा और रूस के जार नष्ट हो गए, जबकि क्रान्तिकारी विजय की सफलता के साथ आगे बढ़ते गए।

हम मनुष्य के जीवन को पवित्र मानते हैं। हम ऐसे उज्ज्वल भविष्य में विश्वास रखते हैं, जिसमें प्रत्येक मनुष्य पूर्ण शान्ति और स्वतन्त्रता का उपभोग करेगा। हम मानवरक्त बहाने के लिए अपनी मजबूरी पर दुखी हैं। परन्तु क्रान्ति के लिए मनुष्यों का बलिदान आवश्यक है। इन्कलाब जिन्दाबाद।"

यह पर्चा दल के कमां०८९ इन चीफ की ओर से लिखा हुआ था, इसमें हस्ताक्षरों की जगह बलराज लिखा हुआ था।

इस घटना का वर्णन श्री मन्मथनाथ गुप्त ने निम्नलिखित शब्दों में किया है—

"सन् 1928 की 8 अप्रैल के दिन की घटना है। उस समय की केन्द्रीय असेम्बली में पब्लिक सेफ्टी नामक एक बिल विचारार्थ उपस्थित था। दोनों ओर से खींचा-तानी हो रही थी। 'ट्रेड डिस्प्यूट्स' बिल अधिक वोटों से पास हो चुका था और सभापति पटेल 'पब्लिक सेफ्टी बिल' पर अपना निर्णय देने के लिए तैयार थे, सब लोगों की आँखें उन्हीं की ओर लगी हुई थीं। बहुत उत्तेजना का समय था। ऐसे समय एकाएक असेम्बली भवन में दर्शक गैलरी से एक भयानक बम गिरा जिसके गिरते ही आतंक का धुआँ छा गया। सर जार्ज शुस्टर तथा सर बामनजी दलाल आदि कुछ व्यक्तियों को हल्की चोटें आईं। बम फेंकने वाले दो नवयुवक थे। एक का नाम सरदार भगतसिंह था और दूसरे का नाम बटुकेश्वर दत्त।"

...निर्धारित योजना के अनुसार इन दोनों वीरों ने अपने-आपको

उन्हें गिरफ्तार करवाया। इसके बाद न्याय का दीर्घ नाटक खेला गया, जिसकी परिणति अन्ततः भगतसिंह, राजगुरु एवं बटुकेश्वरदत्त को फाँसी तथा अन्य कई क्रान्तिकारियों को विभिन्न प्रकार की, कैद की सजाओं में हुई, इसका वर्णन आगे यथास्थान किया जाएगा।

## वायसराय की गाड़ी को उड़ाने की योजना

असेम्बली बम काण्ड में भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त की गिरफ्तारी के बाद उन पर साण्डर्स की हत्या का भी मामला लग चुका था और उनके दल के कई सदस्य इस हत्याकाण्ड के सिलसिले में गिरफ्तार किये जा चुके थे। अतः दल एक प्रकार से छिन्न-भिन्न-सा हो चुका था। फिर भी आज़ाद इस दल के सेनापति थे; और एक योग्य, साहसी एवं कर्मठ सेनानी के सभी गुण उनमें विद्यमान थे। इसके साथ ही भगवतीचरण बोहरा, उनकी धर्मपत्नी दुर्गादेवी, सुशीला दीदी, श्री यशपाल आदि योग्य क्रान्तिकारी उनके साथ थे। अतः दल का कार्य निरन्तर चलता रहा।

इसी कार्यक्रम के अन्तर्गत वायसराय की विशेष रेलगाड़ी को बम से उड़ा देने की योजना बनाई गई। पहले इसके लिए 27 नवम्बर, 1929 का दिन नियत किया गया। परन्तु बाद में कुछ अनिवार्य कारणों से उस दिन यह काम न हो सका। फिर इसके लिए 23 दिसम्बर, 1929 का दिन निश्चित किया गया।

साथ लड़ता हुआ मारा गया।

इन गिरफ्तार व्यक्तियों को मुकदमे में विभिन्न प्रकार की सज़ाएँ मिलीं। गुलाबसिंह, जहाँगीरलाल तथा अमरीकसिंह को पहले फाँसी की सज़ा सुनाई गई, किन्तु बाद मे अमरीकसिंह छोड दिया गया तथा शेष दोनों को कालापानी और शेष अभियुक्तों को अनेक प्रकार की कैद की आज्ञा सुनाई गई।

के पीछे का तीसरा डिब्बा उड़ गया।

इस घटना से फिर तहलका मच गया। पुलिस पहले ही सतर्क थी; अब और भी अधिक बौखला उठी, उसने अपने प्रयत्न पहले से भी तेज कर दिये।

कांग्रेस के सन् 1930 के लाहौर अधिवेशन में प्रथम बार एक ओर भारत के लिए पूर्ण स्वराज्य की माँग की गई, वहीं दूसरी ओर इस घटना की निन्दा की गई। इसके मुख्य अंश इस प्रकार हैं—

"यह कांग्रेस वाइसराय की ट्रेन पर बम विस्फोट के कृत्य की निन्दा करती है और अपना यह निश्चय फिर प्रकट करती है कि इस प्रकार के कार्य न केवल कांग्रेस के उद्देश्यों के प्रतिकूल हैं, अपितु उनसे राष्ट्रीय हित की हानि होती है। यह कांग्रेस महामहिम वाइसराय, श्रीमती इर्विन तथा गरीब नौकरों सहित उनके साथियों का इस बात के लिए अभिनन्दन करती है कि वे सौभाग्य से बाल-बाल बच गए।"

वाइसराय की ट्रेन को बम से उड़ाने का प्रयत्न असफल हो जाने के बाद भी चन्द्रशेखर आज़ाद के नेतृत्व में दल क्रियाशील बना रहा। इसके बाद भी कई जगह बम विस्फोट हुए, डकैती तथा हत्या की योजनाएँ बनीं, किन्तु इन सभी योजनाओं में कोई विशेष सफलता नहीं मिली। पुलिस इस दल के सदस्यों की गिरफ्तारी के लिए हाथ धोकर पीछे पड़ी थी। अगस्त, 1930 में इस दल के चार सदस्य—रूपचन्द, इन्द्रपाल, जहाँगीर लाल तथा कुन्दन लाल गिरफ्तार कर लिये गए। इसके बाद कुछ और सदस्य पकड़ लिये गए; कुल छब्बीस सदस्यों को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया, किन्तु दल के अध्यक्ष चन्द्रशेखर आज़ाद, यशपाल, सुशीला दीदी, दुर्गा भाभी, हंसराज तथा प्रकाशवती आदि पुलिस की पकड़ में नहीं आ सके। अतः उन्हें फरार घोषित कर दिया गया।

सुखदेवराज भी पुलिस की पकड़ में नहीं आये थे। सभी फरार अभियुक्तों की खोज में पुलिस के मुखबिर घूमते रहते थे। एक दिन पुलिस को सूचना मिली कि सुखदेवराज किसी अन्य युवक के साथ लाहौर के शाली-मार पार्क में है। अतः पुलिस ने घेरा डाल दिया। वहाँ सुखदेवराज का तो [illegible] नामक एक युवक गोली से पुलिस के

साथ लड़ता हुआ मारा गया।

इन गिरफ्तार व्यक्तियों को मुकदमे में विभिन्न प्रकार की सजाएं मिलीं। गुलाबसिंह, जहांगीरलाल तथा अमरीकसिंह को पहले फांसी की सजा सुनाई दी, किन्तु बाद में अमरीकसिंह छोड़ दिया गया तथा शेष दोनों को कालापानी और शेष अभियुक्तों को अनेक प्रकार की कैद की सजा सुनाई गई।

कहा कि उन्होंने हमें बम फेंकते हुए देखा, उन्हें यह सफेद झूठ बोलने में कोई झिझक नहीं आई। हम आशा करते हैं कि जिन लोगों का ध्येय न्याय की शुद्धता तथा निष्पक्षता की रक्षा करना है, वे इन तथ्यों से स्वयं निष्कर्ष निकाल लेंगे।

प्रथम प्रश्न के उत्तरार्द्ध का उत्तर कुछ विस्तार से देना होगा, जिससे कि हम उन प्रयोजनों और परिस्थितियों को एक पूर्ण और खुले रूप में स्पष्ट कर सकें, जिनके फलस्वरूप यह घटना हुई, जिसने अब ऐतिहासिक रूप ले लिया है। जेल में हमसे कुछ पुलिस के अधिकारियों ने मुलाकात की, उनमें से कुछ ने जब हमें यह बताया कि विचाराधीन इस घटना के पश्चात् दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए लार्ड इरविन ने यह कहा कि हम लोगों ने बम फेंककर किसी व्यक्ति पर नहीं, अपितु स्वयं एक संविधान पर आक्रमण किया है, तब हमें प्रतीत हुआ कि इस घटना के महत्त्व का सही मूल्यांकन नहीं किया गया है।

मानवमात्र के प्रति हमारा प्रेम किसी से कम नहीं है। अतः किसी व्यक्ति के प्रति विद्वेष रखने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसके विपरीत हमारी दृष्टि में मानव-जीवन इतना पवित्र है कि उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता।

हमारा लक्ष्य उस संस्था के प्रति अपना व्यावहारिक प्रतिरोध प्रकट करना था, जिसने अपने आरम्भ से ही न केवल अपनी निरुपयोगिता का, अपितु हानिकारक दूरगामी शक्ति का भी नग्न प्रदर्शन किया है। हमने जितना अधिक चिन्तन किया है, हम उतने ही अधिक इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि इस संस्था (असेम्बली) के अस्तित्व का उद्देश्य दुनिया के सामने भारत की गरीबी तथा असहायता का प्रदर्शन करना है तथा यह एक

सदस्य स्व० श्री सी० आर० दास के उन शब्दों से प्रेरणा ली है, जो उन्होंने अपने पुत्र को एक पत्र में लिखे थे; जिनका तात्पर्य था कि इंगलैंड को उसके दुःस्वप्न से जगाने के लिए बम की आवश्यकता है और हमने उन लोगों की ओर से असेम्बली के फर्श पर बम फेंका है, जिनके पास अपनी हृदयविदारक वेदना की अभिव्यक्ति के लिए अन्य कोई राह नहीं रह गई थी। हमारा एकमात्र उद्देश्य था कि हम बहरों को अपनी आवाज़ सुनाएँ और समय की चेतावनी उन लोगों तक पहुँचाएँ, जो उनकी अनदेखी कर रहे हैं।...हमने उन लोगों को चेतावनी दी है, जो सामने आनेवाली परिस्थिति की चिन्ता किए बिना सरपट दौड़े चले जा रहे हैं।

पिछले खण्डों में हमने काल्पनिक अहिंसा शब्द का प्रयोग किया है। हम उसकी व्याख्या करना चाहते हैं। हमारी दृष्टि से बल का प्रयोग तब अन्यायपूर्ण होता है, जब उसका प्रयोग आक्रमण की रीति से किया जाए और हमारे दृष्टिकोण में यह हिंसा है। किन्तु जब बलप्रयोग किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाए, तो यह नैतिक दृष्टि से न्यायसंगत है। शक्ति के प्रयोग का पूर्णतया बहिष्कार एक कोरी काल्पनिक भ्रान्ति है। इस देश में एक नया आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है, जिसकी पूर्व सूचना हम दे चुके हैं। यह आन्दोलन गुरु गोविन्दसिंह, शिवाजी, कमाल पाशा एवं रिज़ा खां, वाशिंगटन एवं गैरी बाल्डी और लायफेते एवं लेनिन के कार्यों से प्रेरणा ग्रहण करता है।

हमें ऐसा लगा कि विदेशी सरकार और भारत के सार्वजनिक नेताओं ने इस आन्दोलन से आँखें मूँद ली हैं तथा उनके कानों में इसकी आवाज़ नहीं पड़ी है। अतः हमें यह कर्तव्य लगा कि ऐसे स्थानों पर चेतावनी दी जाए, जहाँ हमारी आवाज़ अनसुनी न रह सके।...हमारे मन में उन लोगों के प्रति कोई व्यक्तिगत द्वेष या वैर नहीं था, जिनको इस घटना के दौरान मामूली चोटें आई हैं।...हमने जानबूझकर असेम्बली में बम फेंका। तथ्य स्वयं स्पष्ट है। हमारा अनुरोध है कि हमारे प्रयोजन को हमारे कार्य के परिणाम से ही आँका जाना चाहिए, न कि काल्पनिक परिस्थितियों एवं पूर्वाग्रहों के आधार पर। सरकारी विशेषज्ञ द्वारा दिए गए प्रमाणों के बावजूद यह सत्य है कि हमने असेम्बली भवन में जो बम फेंके, उनसे एक

करने के लिए करोडो रुपये पानी की तरह बहा रहे हैं। ये भयंकर विषम-ताएँ और विकास के अवसरो की कृत्रिम समानताएँ समाज को अराजकता की ओर ले जा रही हैं।

यदि इसकी उपेक्षा कर दी जाती है तथा वर्तमान शासन-व्यवस्था नवोदित प्राकृतिक शक्तियो के मार्ग को रोक देती है और यह क्रम निरन्तर चलता रहा, तो एक भयंकर संघर्ष उत्पन्न होना निश्चित है, जिसके फल-स्वरूप समस्त अवरोधक तत्त्वो को उठाकर फेंक दिया जाएगा तथा सर्व-हारा वर्ग का आधिपत्य होगा, जिससे क्रान्ति का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। क्रान्ति मानव-जाति का जन्मसिद्ध अधिकार है। स्वतन्त्रता सभी मनुष्यों का एक ऐसा जन्मसिद्ध अधिकार है, जिसे किसी भी स्थिति में छीना नहीं जा सकता। श्रमिक वर्ग समाज का वास्तविक आधार है। जन प्रभुता की स्थापना श्रमिकों का अन्तिम लक्ष्य है। इन आदर्शों तथा आस्था के लिए हम उन सब कष्टो का सामना करेंगे, जो हमें न्यायालय द्वारा दिये जाएँगे। इस वेदी पर हम अपना यौवन धूपबत्ती की तरह जलाने के लिए सन्नद्ध हुए हैं। इस महान लक्ष्य के लिए कोई भी बलिदान बड़ा नहीं माना जा सकता। हम क्रान्ति की उन्नति की सन्तोष के साथ प्रतीक्षा करेंगे।''' इन्कलाब—जिन्दाबाद।"

भगतसिंह के इस भाषण से स्वाभाविक रूप से देश का ध्यान उनके तथा दल के प्रति आकृष्ट हुआ। इस मुकदमे में उन्होंने अपने बचाव का कोई प्रयत्न नहीं किया। अदालत की कार्यवाही 10 जून, 1929 को पूरी हो गई और इसके दो दिन बाद 12 जून को निर्णय सुना दिया गया, जिसमें भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त दोनों को आजीवन कारावास का दण्ड दिया। इसके बाद भगतसिंह पंजाब की बरस्टाल जेल मियांवाली तथा बटुकेश्वर [illegible] लाहौर केन्द्रीय जेल भेज दिये गए।

लाहौर उच्च न्यायालय में इस अपील की पेशी जस्टिस फोर्ड तथा जस्टिस एडीसन के सामने हुई। यहाँ भी भगतसिंह ने अपने उद्देश्यों के विषय में बयान दिया। इस बयान में उन्होंने यह सिद्ध करना चाहा कि वे कोई अपराधी नहीं हैं,वरन् मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करनेवाले एक योद्धा हैं। उन्होंने इस बात पर विशेष बल दिया कि किसी भी अपराधी को दण्ड उसके उद्देश्य को ध्यान में रखकर मिलना चाहिए—

" जब तक अभियुक्त के मनोभाव का पता न लग जाए, उसके वास्तविक उद्देश्य का पता नहीं चल सकता। यदि उद्देश्य को पूरी तरह भुला दिया जाए, तो किसी भी व्यक्ति के साथ न्याय नहीं हो सकता, क्योंकि उद्देश्य की उपेक्षा करने पर संसार के बड़े-बड़े सेनापति साधारण हत्यारे नजर आएँगे। सरकारी कर ग्रहण करने वाले अधिकतर चोर-धोखेबाज दिखाई देंगे और न्यायाधीशों पर भी हत्या का अभियोग लगेगा। इस तरह तो समाज व्यवस्था और सभ्यता, खून-खराबा, चोरी और जाल-साजी बनकर रह जाएगी। यदि उद्देश्य की उपेक्षा की जाए तो सरकार को क्या अधिकार है कि समाज के व्यक्तियों से न्याय की उपेक्षा करे! उद्देश्य की उपेक्षा की जाए, तो हर धर्म-प्रचारक झूठ का प्रचार दिखाई देगा और प्रत्येक पैगम्बर पर अभियोग लगेगा कि उसने करोड़ों अनजान और भोले-भाले लोगों को गुमराह किया। यदि उद्देश्य को भुला दिया जाए, तो हजरत ईसा मसीह गड़बड़ करने वाले, शान्ति भंग करने वाले और विद्रोह का प्रचार करने वाले दिखाई देंगे और कानून के शब्दों में खतरनाक व्यक्ति समझे जाएँगे, किन्तु हम उनकी पूजा करते हैं; हमारे हृदयों में उनके लिए असीम आदर है।"

लाहौर उच्च न्यायालय ने इस अपील को खारिज कर दिया तथा निचली अदालत की सजा को कायम ठहराया। जेलों में राजनीतिक कैदियों के लिए सुविधाओं को लेकर भगतसिंह ने 15 जून, 1929 से आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। यह समाचार मिलने पर बटुकेश्वरदत्त ने भी लाहौर केन्द्रीय जेल में उसी दिन से उनके समर्थन में भूख हड़ताल शुरू कर दी। भगतसिंह उन दिनों मियाँवाली जेल में थे। तब इन पर लाहौर षड्‌-यंत्र का मुकदमा भी चलने लगा था। इस हड़ताल के बाद अभियुक्त

लाहौर सेण्ट्रल जेल में थे। अतः 17 जून, 1929 को उन्होंने पंजाब रा के इंसपेक्टर जनरल जेल को अपना स्थानान्तरण लाहौर सेण्ट्रल जेल करवाने के लिए प्रार्थना-पत्र दिया। उनकी यह माँग मान ली गई औ इसी माह के अन्तिम सप्ताह में उन्हें लाहौर सेण्ट्रल जेल भेज दिया गया।

## लाहौर काण्ड पर मुकदमा :

साण्डर्स हत्याकाण्ड, जो लाहौर काण्ड भी कहलाता है, इस पर मुकदमा 10 जुलाई, 1929 से लाहौर के मजिस्ट्रेट श्री कृष्ण की अदालत में प्रारम्भ हुआ। भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त अनशन पर थे, अतः उन्हें स्ट्रेचर पर अदालत में लाया गया। इसके बाद उनके समर्थन में इस काण्ड के अन्य अभियुक्तों ने भी भूख हड़ताल आरम्भ कर दी। भगतसिंह ने 14 जुलाई, 1929 को अपनी माँगो के विषय में भारत सरकार के गृह सदस्य को एक पत्र भेजा, जिसमें कैदियों के लिए सुविधाओं की माँग की गई थी। सरकार इन माँगों को कोई महत्त्व नहीं दे रही थी, हड़ताल चलती रही। कैदियों का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता रहा, भगतसिंह का वजन प्रारम्भ में 133 पौण्ड था, जो 30 जुलाई तक लगभग 5 पौण्ड प्रति सप्ताह गिरता रहा और फिर स्थिर हो गया।

## अनशन में जतीनदास की मृत्यु

हो गए हैं, उनमें करवट बदलने की भी ताकत नहीं है। वह बहुत धीरे-धीरे बोलते हैं। वास्तव में देखा जाए, तो वह मौत की ओर बढ़ रहे हैं। मुझे इस बहादुर नौजवान के कष्ट को देखकर बहुत दुःख हुआ। मालूम होता है, वे अपने प्राणों की बाजी लगाकर इस लड़ाई में शामिल हुए हैं। वे चाहते हैं कि राजनीतिक कैदियों के साथ राजनीतिक कैदियों का जैसा व्यवहार हो। मुझे पूरा विश्वास है कि यह तपस्या सफलता से सुशोभित होकर ही रहेगी।'

इस अनशन की सहानुभूति में अनेक अन्य जेलों में भी अनशन किया गया। इस अनशन के कारण मुकदमे की तारीखें भी बदलती गईं। बाद में पंजाब जेल कमेटी ने सुधार की मांगों पर विचार करने के लिए एक उप-समिति बनाई और 2 सितम्बर, 1929 को जतीनदास को छोड़कर अन्य सभी ने अनशन तोड़ दिया। इस उपसमिति ने जतीनदास को रिहा कर देने की सिफारिश की थी, किन्तु सरकार ने बिना जमानत रिहा करना स्वीकार नहीं किया। और जमानतनामे पर जतीनदास ने हस्ताक्षर करने से मना कर दिया। जतीनदास की स्थिति को देखकर भगतसिंह आदि ने दो दिन बाद पुनः अनशन प्रारम्भ कर दिया। अन्त, 13 सितम्बर, 1929 को एक बजकर पाँच मिनट पर जतीनदास मृत्यु को प्राप्त हो गए। उनके शव को लाहौर से कलकत्ता भेजने के लिए नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने 600 रु० भिजवाए थे, अतः उनका शव कलकत्ता भेज दिया गया, जहाँ उनके अन्तिम संस्कार में लाखों लोगों ने हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की।

इन्हें विश्वास था कि यह सब कानूनी कार्यवाही केवल एक दिखावा थी। अतः ये भी अदालत की हर कार्यवाही पर अड़ंगा लगाते रहते थे। एक बार इसी प्रकार की एक घटना में न्यायाधिकरण के अध्यक्ष जस्टिस कोल्डस्ट्रीम ने पुलिस को आदेश दिया कि इन अभियुक्तों को लाठियों तथा जूतों से पीटा जाए। पुलिस ने ऐसा ही किया। अतः अभियुक्तों ने दूसरे दिन से अदालत की कार्यवाही का बहिष्कार कर दिया और जस्टिस कोल्डस्ट्रीम को बदलने की माग की। इस दिन पुलिस द्वारा अभियुक्तों के साथ जो दुर्व्यवहार किया गया, इस कार्यवाही की न्यायाधिकरण के भारतीय सदस्य जस्टिस आगा हैदर ने भी आलोचना की थी, अतः कोल्डस्ट्रीम के साथ ही आगा हैदर को भी बदलकर नया न्यायाधिकरण बनाया गया, जिसमें जस्टिस जी० सी० हिल्टन, जस्टिस अब्दुल कादिर तथा जस्टिस जे० के० टैप थे।

अभियुक्तों ने फिर भी अदालत का बहिष्कार जारी रखा। भगतसिंह का कहना था कि जस्टिस कोल्डस्ट्रीम को अपने व्यवहार के लिए माफी मांगनी चाहिए। सरकार ने जस्टिस कोल्डस्ट्रीम को लम्बी छुट्टी पर भेज दिया था और सरकार इस मांग को स्वीकार भी कैसे कर सकती थी।

फैसला :

न्यायाधिकरण में अभियुक्तों की अनुपस्थिति में एकतरफा कार्यवाही चली। इसके बाद 26 अगस्त, 1930 को अदालत ने अपना काम पूरा कर लिया, तब अभियुक्तों के पास सन्देश भेजा गया कि वे अपने बचाव के लिए स्वयं कुछ कहना चाहें या वकील रखना चाहें अथवा कोई गवाह प्रस्तुत करना चाहें तो करें। अभियुक्त इस नाटक का अर्थ समझते थे; क्योंकि समस्त कार्यवाही हो जाने के बाद अब केवल निर्णय ही दिया जाने वाला था, अतः उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया।

7 अक्टूबर 1930 को इस मुकदमे का फैसला सुना दिया गया। अभियुक्तों ने अदालत का बहिष्कार कर रखा था, अतः ट्रिब्यूनल के एक विशेष संदेशवाहक ने उन्हें यह फैसला जेल में ही जाकर सुनाया। फैसले के अनुसार अभियुक्तों को निम्न दण्ड दिये गए थे—

फाँसी की सजा—भगतसिंह, राजगुरु तथा सुख
काले पानी की सजा—कमलनाथ तिवारी, जयदेव
कुमार सिन्हा, शिव वर्मा, महावीर
सिंह तथा किशोरीलाल।
7 वर्ष की कैद—कुन्दनलाल।
३ वर्ष की कैद—प्रेमदत्त।

इसके अतिरिक्त जितेन्द्र सान्याल, मास्टर आज्ञाराम, अजय घोष, देशराज तथा सुरेन्द्रनाथ पाण्डेय रिहा कर दिए गए।

फैसले के बाद

बदलवाने के लिए आवाज उठाई, जगह-जगह से लोगों ने हस्ताक्षर अभियान चलाकर वाइसराय के पास अनुस्मारक भेजे, किन्तु, इनका परिणाम शून्य ही रहा। और 23 मार्च, 1931 को इन तीनों वीरों को लाहौर में फाँसी दे दी गई।

फाँसी दे दिए जाने पर भी देश के आक्रोश में कमी नहीं आई। देश भर के समाचार-पत्रों ने सरकार के इस कृत्य की भर्त्सना की। महात्मा गांधी उस समय भारत की राजनीति पर छाए हुए थे। फरवरी, 1931 में वाइसराय लार्ड इरविन के साथ उनका एक समझौता हुआ, जिसे गांधी-इरविन समझौता कहा जाता है। भारत की जनता बड़ी आशाओं के साथ इस समझौते की रिपोर्ट की प्रतीक्षा कर रही थी। उसे पूरा विश्वास था कि गांधीजी इन वीरों को फाँसी पर चढ़ने से बचा लेंगे, किन्तु समझौते की रिपोर्ट प्रकाशित होने पर उसकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया; समझौते में इस मामले का कोई उल्लेख ही नहीं था। हाँ, कांग्रेसी सत्याग्रही, जो जेलों में थे, सबको छोड़ दिए जाने की घोषणा की गई थी। गांधीजी के इस कार्य की खूब आलोचना हुई। जगह-जगह पत्रकारों ने उनसे इस विषय में प्रश्न पूछे। इस फाँसी के कुछ ही दिन बाद करांची कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के लिए वहाँ जाने पर उन्हें काले झण्डे दिखाए गए।

इस फाँसी के बाद पंजाब में जगह-जगह सभाएँ हुईं। लोगों ने अपने खून से लिखकर इसका बदला लेने की शपथ ली। किसानों ने कर देना बन्द कर दिया। भगतसिंह उनके लिए आराध्यदेव के समान बन गए थे। उनके चित्र धड़ाधड़ बिकने लगे। देश भर में इन वीरों की वीरतापूर्ण जीवनी की पुस्तकें प्रकाशित होने लगीं। सरकार इन्हें अपने लिए मौत का साया समझती थी। परिणामस्वरूप इन चित्रों एवं पुस्तकों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

इन वीरों के शहीद होने पर भारतीय क्रान्तिकारियों के इतिहास के एक अध्याय की इतिश्री हो गई।

### इस बीच आज़ाद की भूमिका :

भगतसिंह आदि के गिरफ्तार हो जाने पर भी चन्द्रशेखर आज़ाद

निष्क्रिय होकर नहीं बैठे। इसके बाद भी वे कुछ-न-कुछ करते रहते थे। वाइसराय की गाड़ी को बम से उड़ाने का प्रयास भी इसकी पुष्टि करता है। इसके साथ ही वह पण्डित मोतीलाल नेहरू तथा उनके सुपुत्र पण्डित जवाहरलाल नेहरू से भी मिले थे। यद्यपि कांग्रेस के तथा उनके सिद्धान्तों में अन्तर था, फिर भी दोनों के लक्ष्य समान थे। नेहरू परिवार से उनके सम्बन्ध सुमधुर थे। यह परिवार यद्यपि खुले रूप में क्रान्तिकारियों का समर्थन नहीं करता था, तथापि इसे इन वीरों के साथ सहानुभूति अवश्य थी। कहा जाता है, अपने इन्हीं फरारी के दिनों में 1930 में वह आनन्द भवन, इलाहाबाद गए। वहाँ उन्होंने पण्डित मोतीलाल नेहरू से भेंट की। पण्डित नेहरू ने उन्हें अहिंसा का मार्ग त्यागने का परामर्श दिया था, जिसे आज़ाद ने विनम्र शब्दों में अस्वीकार कर दिया था। उन्होंने कहा कि उन्हें अहिंसा पर विश्वास नहीं था, वह नहीं समझते थे कि कांग्रेस की इस अहिंसा की नीति से अंग्रेज भारत को छोड़कर चले जाएँगे। अंग्रेजों को भगाने के लिए वह हिंसा को अनिवार्य मानते थे। इसके बाद वह पण्डित जवाहरलाल नेहरू से भी मिले थे। उनकी गिरफ्तारी पर दस हज़ार रुपयों का इनाम था और वह इस प्रकार घूम रहे थे, इससे जवाहरलाल नेहरू को बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने इस विषय में आज़ाद से सचेत रहने को कहा, किन्तु, आज़ाद को इस सबकी परवाह कहाँ थी। उनका तो बस इतना ही कहना था कि कौन सी पुलिस उन्हें नहीं पकड़ पाएगी। इन्हीं दिनों गांधी-इरविन समझौते के लिए बातें चल रही थीं। इस सम्बन्ध में आज़ाद ने नेहरूजी से पूछा था कि इस समझौते में प्राणों को हथेली पर रखकर घूमने वाले क्रान्तिकारियों के लिए क्या किया जाएगा? पण्डित नेहरू शायद इसका कोई उत्तर नहीं दे पाए थे, क्योंकि वे जानते थे कि इस समझौते के हो जाने पर भी इन वीरों की रक्षा नहीं हो सकेगी। इस समझौते में गांधीजी इरविन से बातें करेंगे और उन्हें अपने सिद्धान्त सहर्ष दिए दे, किन्तु नेहरूजी की हार्दिक इच्छा थी कि इन क्रान्तिकारियों की रक्षा होनी चाहिए। भगतसिंह आदि को फाँसी दे दिए जाने पर उन्हें जो दुःख हुआ, उसे व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था—

"मैं भगतसिंह तथा उनके साथियों के अन्तिम दिनों में मौन धारण किए रहा, क्योंकि मैं जानता था कि कहीं मेरे बोलने से फाँसी की सजा रद्द होने की सम्भावना जाती न रहे। मैं चुप रहा, गोकि इच्छा होती थी मैं उबल पड़ूँ। हम सब मिलकर उन्हें बचा न सके, गोकि हमारे इतने प्यारे थे, और उनका महान् त्याग तथा साहस भारत के नौजवानों के लिए एक प्रेरणा की चीज़ थी और है। हमारी इस असहायता पर देश में दुःख प्रकट किया जाएगा, किन्तु साथ ही हमारे देश को इस स्वर्गीय आत्मा पर गर्व है और जब इंगलैण्ड हम से समझौते की बात करे, तो हम भगतसिंह की लाश को भूल न जाएँ।"

क्रान्तिकारियों से नेहरूजी की सहानुभूति के कारण लाहौर काण्ड के एक मुखबिर कैलाशपति ने उनके नाम का भी उल्लेख किया था इस सम्बन्ध में मन्मथनाथ गुप्त लिखते हैं—

"उसकी स्मरण-शक्ति अद्भुत थी। बयान में उसने लाहौर से लेकर कलकत्ते तक बीसियों मनुष्यों का नाम लिया। जिस सरगर्मी से वह क्रान्तिकारी बना था, उसी सरगर्मी से मुखबिर बना न तब कोई उसको फिक्र थी न अब।...उसने अपने बयान में पण्डित जवाहरलाल तक को सान दिया था, फिर कौन बचता।"

स्पष्ट है कि नेहरूजी को यद्यपि क्रान्तिकारियों से पूरी सहानुभूति थी, फिर भी वह कुछ कर पाने में असमर्थ थे।

## आज़ाद द्वारा भगतसिंह की मुक्ति का प्रयास :

1930 में कांग्रेस का आन्दोलन भी जोरों पर थे, अतः क्रान्तिकारी दल ने भी अपनी कार्यवाहियाँ तेज करने का निर्णय लिया। इस समय दल के भगतसिंह आदि अनेक सदस्य जेलों में थे, किन्तु आज़ाद चुप नहीं बैठे थे, इस समय उनके मुख्य सहयोगी भगवतीचरण थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि भगतसिंह को सरकार अवश्य फाँसी पर लटका देगी। इस समय आज़ाद तथा भगवतीचरण ने भगतसिंह को जेल से मुक्त कराने की योजना बनाने की सोची। उन्होंने योजना के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया। [illegible] देने पर तुली हुई थी। यदि ऐसे समय में उन्हें सरकार भग [illegible]

जेल से छुड़ा लिया जाता, तो इससे पूरी दुनिया में एक तहलका मच जाता। आज़ाद इसे कार्यरूप देकर सरकार की जड़ें हिला देना चाहते थे।

इस योजना पर पहले आज़ाद और भगवतीचरण कई दिनों तक विचार करते रहे, कि इसके लिए कितनी तैयारी करनी होगी। कार्यवाही के समय कुछ पुलिस वालों तथा दल के सदस्यों का मारा जाना भी आवश्यक होगा, इसके लिए बमों, पिस्तौलों आदि की भी आवश्यकता थी, इसके साथ ही एक-दो कारों तथा इस सब सामान को छिपाने के लिए जेल के पास ही किसी मकान को भी किराये पर लेना पड़ता। इस योजना में महिलाओं को सम्मिलित किया जाए अथवा नहीं इस पर भी विचार किया गया। योजना का निश्चय हो जाने पर यशपाल, सुखदेवराज, धन्वन्तरि आदि को भी इसके बारे में बताया गया तथा इस योजना में दुर्गा देवी एवं सुशीला दीदी का भी सहयोग लेना निश्चित किया गया।

जाएँ और ड्राइवर उन्हें लेकर चल दे। पुलिस पर धावा बोलने के लिए क्रान्तिकारियों के दो समूह बनाए गए थे। एक दल बमों से हमला करता, जिसका नेतृत्व भगवतीचरण को करना था। दूसरा दल पुलिस को पीछा करने से रिवाल्वरों से रोकता, इसके नेता चन्द्रशेखर आज़ाद बनाए गए थे।

इस योजना के लिए भगतसिंह से भी सम्पर्क करके सलाह कर ली गई थी। बोरस्टल जेल में पुलिस का सुरक्षा प्रबन्ध सेण्ट्रल जेल की तुलना में कम था। अत: भगतसिंह का विचार था कि पुलिस पर हमला बोरस्टल जेल के बाहर किया जाए, तो अच्छा रहेगा, किन्तु बोरस्टल जेल बड़ी सड़क से कुछ दूर पीछे को थी, अत: भगतसिंह एवं बटुकेश्वरदत्त के मोटरगाड़ी में बैठने तक यहाँ सेण्ट्रल जेल की पुलिस भी पहुँच सकती थी और उनका दूसरी बार फिर सामना करना पड़ जाता। अन्ततः सेण्ट्रल जेल के बाहर ही धावा बोलने की योजना निश्चित की गई। योजना रोमांचक थी। इसमें दोनों ओर से कुछ लोगों का मृत्यु को प्राप्त हो जाना निश्चित था, किन्तु क्रान्तिकारियों को मृत्यु का भय कभी रहा ही नहीं, वे ऐसा करने के लिए जी-जान से जुट गए। भगतसिंह तथा दत्त को भी इसकी सूचना दे दी गई।

### भगवतीचरण की मृत्यु :

इस योजना के लिए बम बनाए गए, अत: उनकी उपयोगिता देखने के लिए भगवतीचरण ने उनका पूर्व परीक्षण करने का विचार किया। इस परीक्षण के लिए 28 मई, 1930 के दिन वह सुखदेवराज तथा बच्चन, इन दो क्रान्तिकारियों को साथ लेकर रावी के किनारे पहुँचे और रावी पार कर जंगल में चले गए।

इधर अन्य क्रान्तिकारी बहावलपुर रोड वाले मकान में थे। योजना को कार्यरूप देने में केवल दो दिन शेष रह गए थे, अत: यहाँ उपस्थित लोग हथियारों की साफ-सफाई में लग गए। आज़ाद ने प्रत्येक को अलग-अलग कार्य सौंपे थे, इसलिए सब अपना-अपना कार्य करने लगे। इसी बीच एक ताँगे में घायल सुखदेवराज आते दिखाई दिए। वह दर्द से कराह रहे थे, उनके पैर में कपड़े की पट्टी बँधी थी, जो अत्यधिक रक्त बहने से लाल हो चुकी

थी। उन्हें तांगे से उतारकर अन्दर ले जाया गया। तब उनसे ज्ञात हुआ कि बम के परीक्षण के समय बम भगवतीचरण के हाथ में ही फट गया था। जिससे उनका हाथ उड़ गया। उसी के कारण सुखदेवराज के पैर में भी गम्भीर चोट लगी थी। भगवतीचरण की हालत अत्यन्त गम्भीर थी, उन्हीं ने सुखदेव को यहाँ भेजा था, ताकि अन्य सदस्यों को इसका समाचार दिया जा सके। इस घटना का वर्णन करते हुए श्री वीरेन्द्र लिखते हैं—

"सुखदेवराज उन्हें छोड़कर आना न चाहता था। परन्तु भगवतीचरण ने उनसे कहा, 'बचने की कोई आशा नहीं। इतना खून बह चुका है कि मैं अब बच नहीं सकता। न ही तुम मुझे बहावलपुर रोड तक पहुँचा सकते हो। मैं यह भी नहीं चाहता कि इस हालत में जाने से किसी को सन्देह हो जाए और मेरे दूसरे साथियों के लिए कोई मुसीबत खड़ी हो जाए। इसलिए अब मुझे यहीं छोड़ दो और तुम जाओ और जाकर शेष साथियों को सावधान कर दो। मेरी अब चिन्ता मत करना। जो कुछ होगा देखा जाएगा।"

यशपाल अपने एक साथी को वहाँ पर बिठाकर शहर की ओर चले गए, ताकि स्ट्रैचर या चारपाई का प्रबन्ध किया जा सके और यदि हो सके तो किसी डाक्टर को भी लाया जाए, किन्तु उनके जाने के कुछ ही देर बाद भगवतीचरण भी इस संसार से चल बसे।

देर रात गए जब यशपाल चारपाई, चादरें तथा दवा लेकर वहाँ फिर आए, तो भगवतीचरण की जगह केवल उनका शव पड़ा हुआ था। वह अपने जिस साथी को वहाँ पर छोड़ गए थे, वह भी डरकर भाग गया था। इससे यशपाल को बड़ी निराशा तथा भारी दुःख हुआ। शव को चादर में लपेट दिया गया तथा उसे अकेले वहाँ छोड़कर साथियों से परामर्श लेने के लिए यशपाल आवास पर लौट आए। यहाँ इस समाचार के ज्ञात होने पर सभी शोक के सागर में डूब गए। प्रातःकाल आज़ाद, यशपाल तथा दो-तीन दूसरे साथी वहाँ जाने को तैयार हो गए। भगवतीचरण की पत्नी दुर्गा देवी भी जाना चाहती थीं, किन्तु साइकल पर बैठाकर महिलाओं को ऐसे स्थान पर ले जाना खतरे से खाली नहीं था। वह बेचारी अपने सुहाग के लुट जाने पर इस मकान में रो भी नहीं सकती थी। उनसे इस अवसर पर चन्द्रशेखर आज़ाद ने लिखा था—

"तुम हमारी माँ हो। हमारी बहिन हो। तुम्हारी इज्जत हमारे हाथ में है और हमारी इज्जत तुम्हारे हाथ में है। मैं तुम्हारी भावनाओं को समझ सकता हूँ, परन्तु तुमने और भगवती भाई ने तो अपनी भावनाएँ उसी दिन पाँवों तले रौंद डाली थी, जिस दिन आप दोनों इस पार्टी में शामिल हुए। इसके यदि पहले इतनी कुर्बानी की है, तो कुछ और करो।'

अतः दुर्गादेवी पति के अन्तिम दर्शन भी नहीं कर सकी। आज़ाद और यशपाल उस स्थान पर गए, जहाँ भगवतीचरण का शव पड़ा था और शव को जमीन में दफना दिया गया, क्योंकि इसे श्मशान में ले जाना हर प्रकार से कठिन था। एक तो जंगल में इस स्थान तक कोई वाहन नहीं आ सकता था, दूसरे यदि इसे यों ही उठाकर ले जाते, तो पुलिस को पता लगने पर सभी लोग भारी विपत्ति में पड़ सकते थे।

यह वर्णन श्री वीरेन्द्र की पुस्तक 'वे इंकलाबी दिन' के आधार पर है। श्री मन्मथनाथ गुप्त ने भगवतीचरण की मृत्यु का वर्णन कुछ दूसरी तरह

से किया है। श्री गुप्त के अनुसार इस दुर्घटना में भगवतीचरण की अंतड़ियाँ बाहर निकल आई थीं। उन्हीं के शब्दों में—

"भगवतीचरण की मृत्यु क्रान्तिकारी इतिहास की एक दर्दनाक घटना है। इसके सम्बन्ध में कई तरह की बातें सुनी जाती हैं। जो कुछ मालूम हो सका है, उसमें केवल इतना निर्विवाद है कि 28 मई, 1930 को साढ़े चार बजे शाम को भगवतीचरण एक बम लेकर प्रयोग करने के लिए रावी के किनारे पर गए। जहाँ बम एकाएक फट गया और भगवतीचरण बहुत सख्त घायल हो गए। कहते हैं चोट से उनकी सारी अंतड़ियाँ बाहर निकल आई थीं, किन्तु फिर भी अन्तिम समय तक उनको दल की धुन थी। वह तीन-चार घण्टे तक जीवित रहे, किन्तु कुछ परिस्थितियाँ ऐसी आई या पैदा की गई जिससे उनको डाक्टरी सहायता नहीं पहुँचाई जा सकी।"

निःसन्देह भगवतीचरण की मृत्यु क्रान्तिकारी दल तथा भगतसिंह की मुक्ति की योजना के लिए एक भारी धक्का थी।

योजना की असफलता :

महिला सुनीला ने जाने की इच्छा व्यक्त की। आज़ाद ने दोनों की बातें सुनीं और दल का नेता होने के नाते उन्हें आदेश दिया—

"यह काम महिलाओं का नहीं है। तुम दोनों में से कोई भी नहीं जाएगी, जो कुछ तुम इस समय कर रही हो, यही क्या कम है। अब हम जाएँगे और भाग्य की परीक्षा करेंगे।"

अत: पूर्व निश्चित समय 1 जून, 1930 को आज़ाद, यशपाल, वैशम्पायन तथा दो-तीन अन्य युवा सदस्य अपने लक्ष्य पर चल पड़े और सेण्ट्रल जेल के समीप पहुँच गए। सब पूरी तरह तैयार होकर योजना अनुसार अपने-अपने स्थानों पर खड़े हो गए। भगतसिंह तथा दत्त को पहले ही इनकी सूचना दे दी गई थी, किन्तु यह योजना सफल न हो सकी।

यह योजना असफल क्यों रही, इस विषय में प्राय: दो मत देखने को मिलते हैं। पहले मत के अनुसार इस घटना से पूर्व इन दोनों कैदियों को ले जानेवाली पुलिस की गाड़ी जेल के गेट से कुछ दूर सड़क पर खड़ी कर दी जाती थी। जेल के फाटक से यहाँ तक कैदियों को पैदल चलकर आना पड़ता था, किन्तु इस दिन गाड़ी जेल के गेट के बिलकुल पास खड़ी की गई और वहीं पर से कैदियों को लेकर चल दी। चन्द्रशेखर आज़ाद आदि देखते रह गए।

दूसरा मत इससे भिन्न है। इस मत के अनुसार अन्तिम समय में भगतसिंह ने जेल से भागने का मत ही बदल लिया था। श्री वीरेन्द्र ने अपनी पुस्तक में इसी मत के अनुसार वर्णन किया। यहाँ श्री वीरेन्द्र का वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है—

"इस योजना का भाग यह भी था कि जब भगतसिंह और दत्त बाहर निकलेंगे, वैशम्पायन बाँसुरी बजाएगा, तो उत्तर में भगतसिंह अपना सिर खुजलाएगा। जिसके अर्थ होंगे कि वह भी तैयार है। इसके बाद कार्य शाही शुरू हो जाएगी। किन्तु न जाने क्यों भगतसिंह ने संकेत नहीं दिया। जेल से बाहर आते ही वह और दत्त कैदियों वाली गाड़ी में बैठ गए और पुलिस उन्हें वहाँ से ले गई। आज़ाद और उनके साथी वहाँ खड़े यह सब देखते रह गए। उन्हें कुछ समझ में नहीं आया कि यह हुआ क्या है। वे निराश होकर लौट आए।

कुछ समय बाद भगतसिंह से पूछा गया कि उन्होंने यह सब क्यों किया, तो उन्होंने उत्तर दिया कि भगवतीचरण की मृत्यु के बाद जीवित रहने की इच्छा न रही थी। वह यह भी नहीं चाहते थे कि उनकी पार्टी की अन्तिम निशानी आजाद भी इस प्रयास में मारे जाएँ। आजाद को खतम कराकर भगतसिंह रिहाई हासिल करना नहीं चाहते थे। इसलिए जब वह जेल से निकले तो उन्होंने देखा कि उनके साथी वहाँ खड़े हैं। फिर भी वह इस कार्यवाही के लिए तैयार न हुए। न जाने इसमें कितने लोग मारे जाते।"

संशय के क्षण :

इस योजना की असफलता से आजाद को भारी दुःख हुआ। बहावलपुर रोड वाले अपने मकान में जाने पर वह किसी से कुछ नहीं बोले और एक कमरे में चले गए। आजाद के सबसे अधिक विश्वासपात्र भगतसिंह थे, इनके बाद भगवतीचरण वोहरा का नम्बर आता। भगवतीचरण पहले ही दुनिया छोड़कर जा चुके थे तथा भगतसिंह के लिए भी फाँसी का फन्दा तैयार हो था। इसी बात पर विचार करते हुए आजाद कई घण्टों तक कमरे में बन्द रहे। बड़ी विचित्र स्थिति थी। एक ओर सबसे प्रिय साथी जेल में बन्द था, उसे फाँसी पर लटकाने के लिए न्याय का नाटक चल रहा था, इसके साथ ही दिवंगत साथी भगवती भाई की अन्तिम इच्छा थी कि भगतसिंह को अवश्य मुक्त कराया जाए। दुर्भाग्य से सारी योजना विफल हो गई थी। क्या हो; क्या न हो का प्रश्न सामने था। अन्त में, सारे सवालों पर विजय पाकर आजाद ने भगतसिंह की मुक्ति के लिए एक बार पुनः प्रयत्न करने का निर्णय लिया। उनके लिए परिस्थितियों के सामने हारकर आत्म-समर्पण करना कायरता थी।

आजाद अटल निर्णय लेकर सो गए, किन्तु भाग्य का इस बार फिर ही विपरीत हो चला था। रात को घर में रखे हुए बमों में से एक बम स्वयं फट गया। इसके धमाके से सबकी नींद खुल गई, सारे दरवाजे और खिड़कियाँ हिल गईं। आजाद ने सबको आदेश दिया कि जितने हथियार, जो सामान आए, उसे लेकर तुरन्त भाग निकला जाए। पुलिस के पहुँचने से [illegible] हुई, जिसके परिणामस्वरूप [illegible] हो गई थी।

दल की महिलाओं को इतनी जल्दी कहाँ भेजा जाए, यह भी एक विकट समस्या थी। इस मकान के बगल में एक इन्जीनियर रहता था। कहीं वह पुलिस को बम विस्फोट की सूचना न दे दे, इस विपत्ति को टालने के लिए यशपाल उसके पास गए। उन्होंने इन्जीनियर को अपनी सारी कहानी बता दी और उससे निवेदन किया कि वह कम-से-कम आधे घण्टे तक विस्फोट की सूचना पुलिस को न दे। इस बीच सारे क्रान्तिकारी वहाँ से चले जाएँगे, तभी पुलिस को इसकी सूचना दी जाए। क्रान्तिकारियों की भावनाओं का सम्मान करते हुए इन्जीनियर ने उनकी बात मान ली। अतः सभी क्रान्तिकारी इस बीच वहाँ से सुरक्षित निकल गए।

सुखदेवराज घायल थे, किन्तु उन्हें किसी अस्पताल में भर्ती कराना सम्भव नहीं था। इसका समाधान भी धनवन्तरि ने निकाल लिया। दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज लाहौर के प्रधानाचार्य डाक्टर आसानन्द राष्ट्रवादी विचारों के व्यक्ति थे। धनवन्तरि कभी उनके विद्यार्थी रह चुके थे। डा० आसानन्द ने अपने घर पर रखकर सुखदेवराज की चिकित्सा का भार अपने ऊपर ले लिया। उन्होंने सुखदेवराज के पैर का आपरेशन किया। उनकी चिकित्सा से सुखदेवराज का पाँव शीघ्र ठीक हो गया। इसके बाद उन्हें अमृतसर भेज दिया गया।

इस प्रकार अनवरत असफलताओं के बाद आज़ाद के सामने दल को पुनः संगठित करने का प्रश्न सर्वप्रथम था। इसके लिए पैसों की आवश्यकता थी। पैसों का प्रबन्ध करने के लिए लाहौर से चले गए और दिल्ली पहुँचे। पूर्ववर्णित गाडोदिया स्टोर डकैती उन्होंने इसी समय डाली थी।

### यशपाल प्रकरण :

यद्यपि दल सदस्यों द्वारा विवाह करने का विरोध नहीं करता था, फिर भी सक्रिय क्रान्तिकारियों से अपेक्षा की जाती थी कि वे अविवाहित रहें। यदि कोई सदस्य विवाह करना चाहता था तो उसे दल से इसके लिए अनुमति लेनी पड़ती थी। गाडोदिया स्टोर डकैती के बाद दल ने एक कारखाना दिल्ली में खोला था। दिखाने के लिए तो यह साबुन, तेल बनाने का कारखाना था, किन्तु इसमें बम बनाने में प्रयुक्त होने के लिए नि—

एसिड बनता था। इस कारखाने का संचालन श्री अज्ञेय करते थे। अज्ञेय के अतिरिक्त यहाँ कैलाशपति, विमलप्रसाद जैन, उनकी पत्नी, यशपाल और प्रकाशवती भी रहते थे। यशपाल और प्रकाशवती के सम्बन्ध अत्यन्त अन्तरंग हो गए थे। वे दोनों साथ-साथ रहते हुए देखे जाने लगे। यह दल के नियमों के विरुद्ध था। अतः दल ने निर्णय लिया कि यशपाल को गोली मार दी जाए। यह काम वीरभद्र तिवारी को सौंपा गया। यशपाल को गोली मारने के बजाय तिवारी ने यह बात यशपाल को बता दी। यशपाल हाथ में रिवाल्वर लेकर कारखाने में गए और प्रकाशवती को लेकर लाहौर चले गए।

इसके बाद यशपाल ने प्रकाशवती से विवाह कर लिया। बाद में वह आज़ाद से मिले। यद्यपि आज़ाद एवं यशपाल का मनमुटाव दूर हो गया, किन्तु दलीय अनुशासन की अवहेलना करने के कारण वीरभद्र तिवारी को दल से निकाल दिया गया तथा यह कारखाना भी बन्द कर दिया गया।

यशपाल के विरुद्ध यह कठोर निर्णय लिए जाने का कारण दलीय अनुशासन के साथ ही यह भी था कि यशपाल प्रकाशवती को भगाकर लाए थे। उसके माँ-बाप द्वारा की गई कार्यवाही दल के लिए घातक सिद्ध हो सकती थी। इस प्रकार आसक्ति में फँसकर कई सदस्य दल को हानि पहुँचा चुके थे।

अष्टम अध्याय

# वीरगति

इधर भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव को फाँसी की सजा सुना दी गई थी, उधर चन्द्रशेखर आज़ाद फरार अपराधी घोषित थे। इन फरारी के दिनों में वे पुलिस की आँखों में धूल झोंकते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान तक घूम रहे थे। पुलिस तो उनके पीछे पड़ी ही थी; उसके अनेकों मुखबिर भी इनाम के लालच में घूम रहे थे। जरा-सा सन्देह होने पर भी पुलिस तलाशी लेने से नहीं चूकती थी, किन्तु आज़ाद के सामने केवल एक ही प्रश्न था कि ऐसी परिस्थितियों में दल को पुनः कैसे सुदृढ़ बनाया जाए। सम्भवतः वह अपने इस अभीष्ट की सिद्धि के लिए दक्षिण भारत जाने का विचार कर रहे थे।

अपने इसी विचार को कार्यरूप में परिणत करने के लिए वह इलाहाबाद पहुँचे। अन्त में 27 फरवरी, 1931 का वह अशुभ दिन भी आ गया। आज़ाद अपने एक साथी सुखदेवराज के साथ अल्फ्रेड पार्क में बैठे हुए थे, सुबह के दस बजे का समय था। सम्भवतः किसी देशद्रोही ने उनके अल्फ्रेड पार्क में होने की सूचना पुलिस को दे दी थी। इतने में दो पुलिस अधिकारी सूचना की सत्यता को जानने के लिए वहाँ आए, जिनके नाम विशेसर सिंह और डालचन्द थे। डालचन्द चन्द्रशेखर आज़ाद को पहचानता था। उसने दूर से ही उन्हें देखा और पहचान लिया। इसके बाद दोनों लौट गए तथा तुरन्त यह सूचना गुप्तचर पुलिस अधीक्षक नाट बावर को दे दी। नाट बावर तुरन्त अपनी गाड़ी से अल्फ्रेड पार्क पहुँच गया तथा उसने अपनी गाड़ी आज़ाद से केवल 10 गज की दूरी पर खड़ी कर दी। वह गाड़ी से उतरा और आज़ाद की ओर बढ़ा। वह आज़ाद को जीवित पकड़ना चाहता था, अतः उसने उनकी ओर

तानते हुए उन्हें आत्मसमर्पण करने की चेतावनी दी। भला आज़ाद ऐसा कैसे कर सकते थे। वह उठ खड़े हुए। उन्होंने नाट की चेतावनी का उत्तर अपनी रिवाल्वर हाथ में लेकर दिया। नाट बावर ने गोली चला दी। इस पर आज़ाद ने भी गोली चलाई। गोरे की गोली आज़ाद की टाँग में लगी तथा आज़ाद की गोरे के कन्धे में। फिर दोनों ओर से गोलियाँ चलने लगी। सम्भवतः अन्य पुलिस भी आ गई थी। नाट बावर की कलाई घायल हो गई। गोलियाँ लगातार चल रही थी, किन्तु, कलाई घायल हो जाने पर नाट बावर एक पेड़ की ओट में हो गया। आज़ाद भी घिसटते हुए एक पेड़ की ओट में हो गए। उनके पास भी पर्याप्त गोलियाँ थी। उन्होंने अपने साथी सुखदेवराज को गोलियाँ चलने पर वहाँ से भगा दिया था। यद्यपि वह जाने को बिल्कुल भी तैयार नहीं थे, किन्तु आज़ाद ने उनकी एक भी नहीं सुनी और बलपूर्वक उन्हें वहाँ से भगा दिया था। अतः वह पुलिस वालों पर अकेले गोलियाँ बरसाते रहे। नाट बावर के ओट में हो जाने पर उसकी जगह पुलिस अधिकारी विश्वेसर सिंह ने ले ली थी। आज़ाद ने उस पर निशाना साधा, इस निशाने से उसका जबड़ा टूट गया। विश्वेसर सिंह को इसकी बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। उसका जबड़ा फिर कभी ठीक न हो सका और सेवाकाल समाप्त होने से पूर्व ही उसे कार्य मुक्त कर दिया गया।

पुलिस वालों ने उनके पाँव में एक गोली मारी तभी उसे हाथ लगाया।

आस-पास के लोगों को जब आज़ाद के घिर जाने का समाचार मिला, तो कई लोग म्योर कालेज के सामने जा पहुँचे थे और इस घटना को देखते हुए वहीं से 'आज़ाद ज़िन्दाबाद' के नारे लगा रहे थे। आज़ाद के भूमि पर गिर जाने पर ही पुलिस वालों का ध्यान नारे लगाने वालों की ओर गया, तब नाट रिवाल्वर लेकर उनकी ओर लपका। इस पर लोग म्योर सेण्ट्रल कालेज तथा मुस्लिम हास्टल के परिसर की ओर भाग गए। इस समय उसे आज़ाद के शव को ले जाने की जल्दी थी, अतः उसने नारे लगाने वालों का अधिक पीछा नहीं किया और लौट गया। इसके बाद पुलिस आज़ाद के शव को लारी में रखकर ले गई तथा घोषणा कर दी कि आज़ाद पुलिस की गोलियों से मारे गए।

आज़ाद के अल्फ्रेड पार्क में होने की सूचना पुलिस को किसने दी, इस विषय में विभिन्न मत व्यक्त किये गए हैं। कुछ पुस्तकों में लिखा मिलता है कि यह सूचना वीरभद्र तिवारी ने दी तथा कुछ लोगों के अनुसार इलाहाबाद के एक सेठ ने यह सूचना दी थी। श्री मन्मथनाथ गुप्त ने स्पष्ट रूप से तो वीरभद्र तिवारी द्वारा मुखबिरी किए जाने का उल्लेख नहीं किया है, परन्तु उनके विचारों से यही ज्ञात पड़ता है कि वह यही कहना चाहते हैं कि यह दुष्कर्म वीरभद्र तिवारी ने ही किया था। श्री गुप्त लिखते हैं—

में बहुत ही जल्दी आ जाते थे। किन्तु कई बार धोखा खाकर आखिरी फैसला उसके साथ न रखने का किया था। वीरभद्र भी जानता था कि वह इस प्रकार दल से निकाल दिया गया है। इसीलिए इलाहाबाद में जब आज़ाद ने वीरभद्र को देखा तो वह चौकन्ने हो गए। आज़ाद और सुखदेवराज जाकर अल्फ्रेड पार्क में एक जगह बैठ गए। इतने में पुलिस अफसर विशेश्वर सिंह और डालचन्द चले आए। इनमें से डालचन्द आज़ाद को पहचानता था ..."

फायदा नहीं है? तुम गरीबी का जीवन बिताते हो, यदि तुम मुझे आज़ाद का पता बता दो, तो तुम्हें बड़ी सरलता से इनाम के दस हज़ार रुपये मिल सकते हैं।"

तिवारी ने साफ इन्कार कर दिया। उसने कहा, "मैं आज़ाद के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता।" तिवारी आज़ाद का घनिष्ठ मित्र था, वह क्रान्तिकारी नहीं था। पर वह उस पर अधिक विश्वास करते थे। वह जब भी कानपुर जाते उसके घर अवश्य जाते। उनकी सारी गतिविधियों का उसे पता रहता था। वह कहाँ जाते हैं क्या करते हैं? ये सारी बातें उसे मालूम रहती थीं। तिवारी के इन्कार कर देने पर इन्स्पेक्टर उसके पीछे पड़ गया। उसने उसे समझाते हुए कहा "दस हज़ार रुपये इनाम के तो मिलेंगे ही सरकार तुम्हें पेंशन भी देगी, तुम और तुम्हारे बाल-बच्चे सुख से जीवन व्यतीत करेंगे। तुम्हारी वृद्धावस्था आराम से कटेगी। आज़ाद एक-न-एक दिन पकड़े तो अवश्य जायेंगे ही, फिर क्यों हाथ में आए अवसर को खो रहे हो। संसार में कोई किसी का नहीं है। बुद्धिमान मनुष्य वही है जो हाथ में आए हुए अवसर का उपयोग करता है।"

जो अब तक किसी को ज्ञात नहीं था।

धरती काँप उठी। भारत माँ का आँचल आँसुओं से भीग गया, पर उन आँसुओं के मूल्य को समझने वाला कोई नहीं था। हाय रे जयचन्द की सन्तानो! तुम्हारे ही कारण देश दासता के बन्धनों में बँधा। तुम्हारे ही कारण अंग्रेजों ने भारत पर शासन किया और तुम्हारे ही कारण आज भारत की स्वतन्त्रता और अखण्डता खतरे में पड़ी हुई है। तुम्हारी निन्दा किन शब्दों में की जाए? किन शब्दों में?

तिवारी को इलाहाबाद ले जाया गया। इलाहाबाद की पुलिस से मिलाया गया। इलाहाबाद की पुलिस ने तिवारी के सहयोग से आज़ाद की गिरफ्तारी की योजना बनाई। तिवारी उस योजना के अनुसार काम करने लगा। ताने-बाने बुनने लगा।

लोभ के दैत्य ने तिवारी के कण्ठ को बुरी तरह जकड़ रखा था। उसने सोचा, जब पाप की कालिख मुँह में लगाई है, तो क्यों न अच्छी तरह लगा लूँ, जिससे नरक के दूतों को भी मुझे पहचानने में कठिनाई न हो। मनुष्य जो भी काम करे, खूब करे, अच्छी तरह करे।

तिवारी ने लोभ के वशीभूत होकर सोचा कि पुलिस के दस हज़ार रुपये तो मिलेंगे ही, क्यों न उस रुपये को भी हड़प लें, जो प्रेस के मालिक के पास जमा है। आज़ाद को पता चलेगा तो कैसे चलेगा? वह मुझ पर अच्छी तरह विश्वास करते हैं। मैं उनसे जो कुछ कहूँगा, वह उसी को सच मानेंगे, उसी के अनुसार करेंगे।

तिवारी प्रेस के मालिक के पास पहुँचा। उसने उससे कहा—"आज़ाद को रुपये की अधिक आवश्यकता है। उन्होंने मुझे भेजा है। क्रान्तिकारी दल के आठ हज़ार रुपये जो तुम्हारे पास जमा हैं, मैं आज़ाद के पास पहुँचा दूँगा।"

प्रेस का मालिक और तिवारी दोनों एक-दूसरे से अच्छी तरह परिचित थे। तिवारी की बात सुनकर प्रेस के मालिक ने तिवारी से कहा—"इस समय रुपए मेरे पास नहीं हैं, क्या तुम आज़ाद से कहकर मुझे कुछ और समय नहीं दिला सकते?"

वास्तव में बात यह थी कि प्रेस के मालिक की नीयत खराब हो गई

दी। वह रुपया देना नहीं चाहता था। उसने सोचा था, पुलिस आजाद के पीछे पड़ी रहती है। वह स्वयं तो रुपया माँगने के लिए आएँगे नहीं, किसी को भेजेंगे तो टाल दूँगा। फिर क्यों न रुपए को हड़प लिया जाए?

भिखारी बोला—"तुम तो आजाद को अच्छी तरह जानते हो। वह वचन को भंग करने वाले को कभी क्षमा नहीं करते, भलाई इसी में है कि तुम रुपए मुझे दे दो।"

प्रेस के मालिक ने कहा—"पूरे रुपए तो मेरे पास नहीं हैं, केवल दो हजार हैं, यदि चाहो तो मैं इस समय दो हजार दे सकता हूँ।"

भिखारी ने सोचा कि भागते भूत की लँगोटी ही सही! मुफ्त के ही दो हजार क्या कम हैं? वह बोला—

"अच्छी बात है, दो हजार ही लाओ। मैं किसी तरह आजाद को मना लूँगा।"

प्रेस के मालिक ने दो हजार रुपए भिखारी को दे दिए, उसने सोचा यदि दो हजार दे देने से बला टल जाए तो क्या बुरा है? फिर भी छः हजार रुपए तो अपनी जेब में ही रहेंगे।

भिखारी रुपया लेकर चला गया। वह उसी दिन झाँसी जाकर आजाद से मिला। उसने आजाद से कहा—"मैं प्रेस के मालिक से बात कर आया हूँ। वह 23 फरवरी को ठीक दस बजे दिन में कम्पनी बाग में लाइब्रेरी के सामने वाले पेड़ के नीचे जो नाले के पास है, आपसे मिलेगा और आपको रुपए दे देगा।

साथ कम्पनी बाग में पहुँच गए और नाले से लगे हुए वृक्ष के नीचे बैठकर प्रेस के मालिक की प्रतीक्षा करने लगे।

अभी कुछ ही देर हुई थी कि पुलिस के आदमी दिखाई पड़े। आज़ाद ने अपने साथी से कहा—"लगता है मेरे यहाँ पहुँचने की सूचना पुलिस को मिल गई है। पुलिस मुझे घेरे—इससे पहले ही तुम यहाँ से चले जाओ।"

क्रान्तिकारी साथी आज़ाद को छोड़कर जाना नहीं चाहता था। पर उन्होंने उसे चले जाने के लिए विवश कर दिया। वह एक आदमी की साइकिल छीनकर उस पर बैठकर चला गया।

साथी के जाने के कुछ ही देर बाद पुलिस कप्तान नाट बावर पुलिस दल के साथ पेड़ के पास आ पहुँचा। उसके साथ पुलिस विभाग का इन्स्पेक्टर विश्वेश्वर सिंह भी था।

नाट बावर दूर से ही चेतावनी के स्वर में बोला—"आत्म-समर्पण कर दो नहीं तो गोली मार दी जाएगी।"

आज़ाद उठकर खड़े हो गए। उन्होंने नाट बावर की बात का उत्तर गोली से दिया। गोली उसकी कलाई में लगी। कलाई की हड्डी टूटी तो नहीं, पर लचक गई।

फिर तो पुलिस की ओर से गोलियाँ चलने लगीं। आज़ाद पेड़ की ओट में खड़े होकर अपनी रक्षा करने लगे। पुलिस की गोलियों का उत्तर गोलियों से देने लगे।

...आज़ाद बड़ी वीरता से पुलिस दल का सामना कर रहे थे। पुलिस के लोग संख्या में अधिक थे, फिर भी वे आज़ाद के साहस को निर्बलित नहीं कर पा रहे थे। दुर्भाग्य से गोलियाँ समाप्त हो गईं—केवल एक गोली बच गई—अन्तिम गोली!

आज़ाद ने अपनी पिस्तौल कनपटी पर ले जाकर उस अन्तिम गोली को अपनी कनपटी पर चला दिया। गोली इस पार से उस पार निकल गई।

आज़ाद धरती की गोद में गिरते ही निष्प्राण हो गए।

श्री [illegible] हृदय में अपनी इन पुस्तक के दो शब्द में लिखा है—

"...मैंने आज़ाद के बलिदान का जो दृश्य देखा था, वह आज भी मेरी आँखों के सामने चमकता है, उससे मुझे प्रेरणा मिलती है. [illegible] लिखकर

है। मैंने उनके बलिदान से लेकर आज तक उनके सम्बन्ध में बार-बार पढ़ा, तथ्यों का संग्रह किया। 'अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद' उसी का परिणाम है। मैं कह सकता हूँ कि इसमें जो बातें लिखी गई हैं, वे साधार एवं तथ्यपूर्ण हैं।"

स्पष्ट है कि श्री व्यथित हृदय ने अपनी पुस्तक की सामग्री की सत्यता का दावा किया है, किन्तु पुस्तक में आजाद की वीरगति को प्राप्त होने की तिथि 23 मार्च (अथवा 23 फरवरी) 1931 लिखी हुई है, जो सर्वथा असत्य है, क्योंकि 23 मार्च, 1931 अमर शहीद भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव का बलिदान दिवस है, न कि आजाद का।

सुखदेवराज इस घटना से कुछ समय पूर्व तक आजाद के साथ ही थे। उनके अनुसार घटना का विवरण इस प्रकार है—

"27 फरवरी प्रातः जलपान करने के बाद जब मैं अपनी साइकिल से चला तो भैया आजाद रास्ते में ही मिल गए। हम दोनों बातें करते-करते पार्क की तरफ बढ़ चले। भैया मुझसे पूछ रहे थे कि चूंकि मैं बर्मा हो आया हूँ, क्या मैं बता सकता हूँ कि कुछ लोग बर्मा के रास्ते देश से बाहर जा सकते हैं। इस सन्दर्भ में मुझे जो जानकारी थी मैंने उन्हें दी। हम दोनों बातें करते-करते पार्क में पहुँच गए। वहाँ एक व्यक्ति पुल के ऊपर बैठा दातून कर रहा था। उसने आजाद को घूरना शुरू कर दिया। उसकी ओर देखकर आजाद को कुछ सन्देह हुआ। उन्होंने मुझसे उल्लेख किया। मैंने फिर उस व्यक्ति की ओर देखा, किन्तु उसने अपना मुँह दूसरी ओर कर लिया।

गोरे के कन्धे में। दोनों ओर से गोलियाँ चलनी शुरू हो गईं। एक गोली आजाद के दाएँ बाजू को चीरती हुई उनके फेफड़े में आ लगी। फिर भी वह गोली चलाते रहे। अफसर की कलाई टूट गई। उसने अपने प्राण बचाने के लिए अपनी मोटर में भागने का प्रयास किया। आजाद लहूलुहान हो चुके थे, फिर भी उन्होंने अपनी गोली से मोटर का टायर पन्चर कर दिया।

इस पर वह गोरा और उसके साथी एक वृक्ष के पीछे जा छिपे। आजाद भी एक वृक्ष की ओट में हो गए। दोनों ओर से गोलियाँ चलने लगीं। इतने में आजाद ने मुझे आदेश दिया कि मैं वहाँ से चला जाऊँ। वह स्वयं लड़ते-लड़ते वहाँ शहीद हो गए। किन्तु उन्होंने अपने एक साथी की जान बचा ली। आजाद का शव भूमि पर पड़ा था, किन्तु किसी पुलिस को उनके निकट जाने का साहस नहीं होता था। अन्ततः उसी गोरे अफसर ने एक सिपाही से कहा कि वह उसकी लाश पर तनिक दूर खड़ा होकर गोली चलाए…।"

सुखदेवराज के इस वर्णन को भी अनेक लेखकों ने विश्वसनीय नहीं माना है। अनेक पुस्तकों के अनुसार स्वयं सुखदेव ही पुलिस का आदमी था। यशपाल के अनुसार वीरभद्र तिवारी द्वारा मुखबिरी की कहानी सुखदेवराज ने ही गढ़ी थी। सुखदेवराज पर इस आधार पर भी सन्देह की पुष्टि होती है कि गोलियाँ चलते समय वह आजाद के साथ ही था, जबकि उसे कोई गोली नहीं लगी और पुलिस की नजरों से वह सुरक्षित कैसे भाग गया? क्या पुलिस ने उस पर जान-बूझकर गोली नहीं चलाई।

इस विषय पर भी मन्मथनाथ गुप्त की यह शंका उचित लगती है—"…यशपाल के अनुसार दल तोड़ दिया गया था, केन्द्रीय समिति तितर-बितर कर दी गई थी, पर यह पूछा जा सकता है कि उस भयंकर दिन इलाहाबाद में इतने क्रान्तिकारियों का जमघट क्यों था? यशपाल वहाँ थे, पाण्डेय वहाँ थे, सुखदेवराज थे, वीरभद्र था…प्रश्न उठता है कि किसने विश्वासघात किया…कितने ही आदमी थे जो अकेले या मिलकर उनसे विश्वासघात कर सकते थे। इस मामले में मुझे याद है कि इलाहाबाद में आजाद की शहादत की अर्द्धशताब्दी के दिन मौजूद व्यक्तियों में से एक ने बिना कुछ सोचे मेरे सामने कहा कि यदि मैं मुँह खोलूँ, तो बहुतों के चि-

दूरसे नजर आएँगे।

"...प्रमाणों से जाहिर है कि वीरभद्र जो यशपाल के अनुसार ग़द्दार खुफिया था, उसके अलावा बहुत से ऐसे लोग थे, जो आज़ाद और भगतसिंह की ख्याति से जलते थे। वे आज़ाद को अपने उत्थान के [illegible] रोड़ा समझते थे।"

सत्य चाहे जो भी रहा हो, इतना तो निश्चित है कि चन्द्रशेखर आज़ाद यहाँ पुलिस वालों से टक्कर लेते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे। इन कथान्तरों से उनके त्याग, बलिदान तथा भारतीय स्वतन्त्रता के संग्राम में उनके महनीय योगदान में कोई अन्तर नहीं पड़ता। और महापुरुषों के सम्बन्ध में किंवदन्तियाँ भी प्रचलित हो ही जाती हैं।

पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा श्रीमती कमला नेहरू ने भी भाग लिया। लोगों ने अपने प्रिय दिवंगत क्रान्तिकारी को श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी शचीन्द्र सान्याल की धर्मपत्नी भी इस सभा में उपस्थित थीं। आज़ाद को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करती हुई श्रीमती सान्याल ने कहा था—

"खुदीराम बोस की भस्मी को लोगों ने तावीज में रखकर अपने बच्चों को पहनाया, ताकि उनके बालक भी खुदीराम बोस की तरह वीर बन सकें। मैं इसी भावना से आज़ाद की राख की चुटकी लेने आई हूँ।"

इस पर लोगों ने उस भस्मी को अपने माथे पर लगाया। बड़ी मुश्किल से थोड़ी-सी भस्मी बची, जो त्रिवेणी में बहा दी गई।

अब भारतीय जनता के पास भारत माता के इस अद्वितीय सपूत की केवल यादें ही शेष थीं। वह पार्क जहाँ आज़ाद वीरगति को प्राप्त हुए थे, एक पवित्र भूमि बन चुकी थी। वह पेड़ जिसकी ओट से आज़ाद ने गोलियाँ चलाई थीं, एक पवित्र वस्तु; आराध्य की मूर्ति बन चुका था। लोगों ने उसकी पूजा करनी प्रारम्भ कर दी थी; उस पर अपनी पवित्र श्रद्धा के प्रतीक फूल-पत्ते चढ़ाने शुरू कर दिए थे, किन्तु अंग्रेजों को यह सहन नहीं हुआ, अतः उन्होंने वह पेड़ भी कटवा डाला, ताकि आज़ाद का कोई भी स्मृति सूचक चिह्न शेष न रहे। इस प्रकार से किसी की स्मृति के भौतिक चिह्नों को नष्ट करने पर उसकी स्मृति नष्ट नहीं होती। आज़ाद भारतीयों के दिलों में बस गए थे, और तब तक बसे रहेंगे जब तक भारतभूमि का अस्तित्व रहेगा। आज़ाद की मृत्यु से भारतवर्ष से एक वीर बांकुरा; एक सच्चा देशभक्त देश से उठ गया था। इसके साथ ही क्रान्तिकारियों के एक युग का भी अन्त हो गया।

नवम अध्याय

# आज़ाद के जीवन के कुछ प्रेरक एवं स्मरणीय प्रसंग

धीरे-धीरे धुआँ देकर दीर्घकाल तक जलने से प्रचण्ड आलोक के साथ एक क्षण में जलकर बुझ जाना अच्छा है। और चन्द्रशेखर आज़ाद ने भी इसी उक्ति को अपने जीवन में चरितार्थ किया। उन्होंने अपने जीवन के केवल 25 बसन्तों में ही भारतीय इतिहास में अपना एक अद्वितीय स्थान बनाया।

यों तो चन्द्रशेखर आज़ाद का अशेष जीवन एक प्रेरक प्रसंग है, जिसमें देशवासियों को त्याग-भावना, देशप्रेम, निर्भीकता आदि शिक्षाएँ प्राप्त होती हैं। फिर भी उनके जीवन के कुछ ऐसे प्रेरक दृष्टान्त मिलते हैं, जिनसे प्रत्येक मनुष्य उनके विषय में कुछ सोचने के लिए बाध्य हो जाता है। उनके हृदय में मातृभूमि के लिए अपने पूर्ण यौवन में समस्त सुख-सुविधाओं तथा भोगों आदि का परित्याग करके वीरगति प्राप्त करने वाले इस अद्भुत क्रान्तिवीर के लिए अनायास ही श्रद्धा का भाव उत्पन्न हो जाता है। अनेक विद्वान लेखकों ने आज़ाद के जीवन के प्रेरक प्रसंगों का अपनी पुस्तकों में वर्णन किया है। उन्हीं में से कुछ प्रसंग यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

कर दिया, जो राजा पर भी निगरानी रखता था। एक बार राजा और प्रभुदयाल बाग में बैठे हुए थे। सहसा आजाद वहाँ पहुँच गए। राजा साहब को उनके इस तरह आने-जाने से बड़ा आश्चर्य हुआ। वह उनके सम्मान में उठ खड़े हुए और उनके मुँह से निकल पड़ा—"पण्डितजी महाराज पधारिए।"

साथ में बैठा प्रभुदयाल भी उठ खड़ा हुआ। राजा ने आजाद को बैठने के लिए कहा। तभी प्रभुदयाल बोल उठा—"पण्डितजी कौन है?"

"बहुत बड़े ज्योतिषी हैं।" राजा साहब ने कहा।

इस पर प्रभुदयाल ने उनका नाम जानना चाहा। राजा साहब एकाएक घबरा गए। आजाद उनकी घबराहट को समझ गए और तपाक से बोल उठे—"किशनलाल।"

इस प्रकार उन्होंने परिस्थिति को बिगड़ने से सँभाल लिया।

राजगुरु कुछ रंगीन स्वभाव के व्यक्ति थे। एक बार उन्हें एक सुन्दर कलैण्डर मिला, जिसमें किसी सुन्दर स्त्री का चित्र था। उन्होंने वह कलैण्डर दल के कारखाने की दीवार पर टाँग दिया। आजाद ने उसे देखा तो टुकड़े-टुकड़े कर फेंक डाला। थोड़ी देर बाद राजगुरु ने चित्र की यह दुर्दशा देखी तो टुकड़े उठा लिए और आजाद से पूछा—"यह किसने किया?"

"मैंने किया," आजाद बोले।

"आपने इस सुन्दर चित्र को क्यों फाड़ा?"

"क्योंकि वह सुन्दर था।"

"क्या इसका मतलब यह है कि जो कुछ भी सुन्दर है, उसे आप नष्ट कर देंगे?"

"हाँ, कर दूँगा।"

"क्या आप ताजमहल को तोड़ डालेंगे?"

"हाँ, तोड़ डालूँगा।"

इस समय आजाद गुस्से में थे; गुस्से में व्यक्ति क्या-क्या कह जाता, उसका कोई वास्तविक अर्थ नहीं होता। ऐसा ही आजाद के साथ भी हुआ था। थोड़ी ही देर में उनका गुस्सा शान्त हो गया। एक घण्टे बाद उन्होंने देखा कि राजगुरु कुछ कह रहे हैं—"एक ओर सुन्दर को और [illegible]

थे। साण्डर्स वध के समय जब आज़ाद ने मुझे लाहौर बुलाया। तो मुझे यह देखकर विस्मय हुआ कि आज़ाद पर भगतसिंह का जादू चल गया। और 'पण्डितजी' अब कच्चा अण्डा सीधा मुँह पर तोड़कर ही गटक रहे हैं। मैंने हैरानी से पूछा, "पण्डितजी! यह क्या?" आज़ाद बोले, "अण्डे में कोई हर्ज नहीं है। वैज्ञानिकों ने उसे फल जैसा ही बताया है।" यह तर्क भगतसिंह का ही था, जिसे आज़ाद दुहरा रहे थे। मैंने बड़ी गम्भीरता से कहा—"बिल्कुल ठीक पण्डितजी! अण्डा फल है; तो मुर्गी पेड़ के सिवा कुछ नहीं हो सकती। मैं भला कब उसे छोड़ूँगा?" भगतसिंह खिल-खिलाकर हँस पड़े—"वास्तव में कैलाश तुम अच्छे तर्कशास्त्री हो सकते हो। भला पण्डितजी! देखिये····।" आज़ाद बीच में ही बिगड़कर बोले—"चल बे, एक तो हमें अण्डा खिला रहा है, और ऊपर से बातें बना रहा है···।"

● एक बार भगतसिंह ने आज़ाद से कहा था—"पण्डितजी! आप हमें अपनी जन्मभूमि और रिश्तेदारों के विषय में बताएँ, ताकि कोई ऐसी-वैसी घटना हो जाए, तो हम उनकी सहायता कर सकें और देशवासियों को यह बता सकें कि शहीद कहाँ पैदा हुए थे।"

इस पर आज़ाद ने कुछ नाराज़गी प्रकट करते हुए कहा—"क्या तुम्हारा सम्बन्ध मुझसे है या मेरे रिश्तेदारों से? मेरी वंशावली और मेरे माता-पिता के सम्बन्ध में तुम्हें पूछने की क्या ज़रूरत? मेरे घर के लोग किसी की सहायता नहीं चाहते और न मैं यह चाहता हूँ कि मेरी जीवनी लिखी जाए। यदि तुम इस तरह बात करते हो, तो गोरखीरता? हमारी शपथ का क्या होगा।"

● [illegible] के भाई का एक संस्मरण उन्हीं के शब्दों में—

—"[illegible] फाँसी पर से [illegible]। [illegible] ने मुझसे यह पूछा कि क्या तुम्हारा [illegible] के लिए [illegible] की ज़रूरत है। इस पर मैंने कहा कि तुम [illegible] हो। [illegible] ने कहा—

[illegible]

सिनेमा देखते पकड़ा जाएगा और अकाल मारा जाएगा। इसके उत्तर में भगतसिंह ने कहा कि उसे (आज़ाद को) मारना भी पुलिस के लिए आसान नहीं होगा, क्योंकि इतनी मोटी गर्दन को फाँसी पर लटकाने के लिए पुलिस को रस्सा भी नहीं मिल पायेगा। एक रस्से से काम भी नहीं चलेगा; दो रस्सों की जरूरत पड़ेगी—एक गले के लिए; एक पेट के लिए। इस पर आज़ाद ने अपने पिस्तौल पर हाथ रखते हुए कहा था, इसके होते हुए कौन माई का लाल है, जो मुझे गिरफ्तार कर सके।"

● एक बार कुछ लोगों ने उन्हें सलाह दी थी कि क्रान्तिकारी दल बिखर चुका है, इसलिए उन्हें भागकर रूस चला जाना चाहिए, क्योंकि पकड़े जाने पर उनके लिए फाँसी निश्चित थी। यह सुनकर आज़ाद ने कहा था—"रूस-फूस की बातें मेरे साथ मत करो। मेरा शरीर भारत की मिट्टी से बना है और मैं भारत की आज़ादी के लिए शत्रु से लड़ते-लड़ते इसी देश की धरती पर मरकर इसकी धूल में मिल जाऊँगा।"

● एक बार आज़ाद अपने साथियों—भवानीसिंह, रामचन्द्र, मास्टर छैलबिहारीलाल, विश्वम्भर दयाल आदि के साथ लैंसडाउन गए हुए थे और पहाड़ियों पर उन्हें निशाना लगाने का प्रशिक्षण दे रहे थे। इनमें से साथियों ने उनका (आज़ाद का) निशाना देखने की इच्छा व्यक्त की क्योंकि उनका निशाना अचूक था। आज़ाद ने उनकी इच्छा को मान लिया। साथियों ने किसी पेड़ के एक पत्ते पर निशाना लगाने को कहा। आज़ाद ने निशाना लगाया और पाँच गोलियाँ चला दीं, किन्तु पत्ता नहीं गिरा। साथियों को बड़ी निराशा हुई और उन्होंने समझ लिया कि निशाना चूक गया। अन्त में पत्ता तोड़ा गया, उसमें पाँचों गोलियों की अलग-अलग पाँच छिद्र बने हुए थे। यह देखकर उनके साथी उनकी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सके।

सिनेमा देखते पकड़ा जाएगा और अकाल मारा जाएगा। इसके उत्तर में भगतसिंह ने कहा कि उसे (आज़ाद को) मारना भी पुलिस के लिए आसान नहीं होगा, क्योंकि इतनी मोटी गर्दन को फाँसी पर लटकाने के लिए पुलिस को रस्सा भी नहीं मिल पायेगा। एक रस्से से काम भी नहीं चलेगा; दो रस्सों की जरूरत पड़ेगी—एक गले के लिए; एक पेट के लिए। इस पर आज़ाद ने अपने पिस्तौल पर हाथ रखते हुए कहा था, इसके होते हुए कौन माई का लाल है, जो मुझे गिरफ्तार कर सके।"

● एक बार कुछ लोगों ने उन्हें सलाह दी थी कि क्रान्तिकारी दल बिखर चुका है, इसलिए उन्हें भागकर रूस चला जाना चाहिए, क्योंकि पकड़े जाने पर उनके लिए फाँसी निश्चित थी। यह सुनकर आजाद कहा था—"रूस-फूस की बातें मेरे साथ मत करो। मेरा शरीर भारत क मिट्टी से बना है और मैं भारत की आज़ादी के लिए शत्रु से लड़ते-लड़ते इसी देश की धरती पर मरकर इसकी धूल में मिल जाऊँगा।"

● एक बार आजाद अपने साथियों—भवानीसिंह, रामचन्द्र, मास्टर छैलबिहारीलाल, विश्वम्भर दयाल आदि के साथ लैंसडाउन गए हुए थे और पहाड़ियों पर उन्हें निशाना लगाने का प्रशिक्षण दे रहे थे। इनमें से साथियों ने उनका (आज़ाद का) निशाना देखने की इच्छा व्यक्त की, क्योंकि उनका निशाना अचूक था। आजाद ने उनकी इच्छा को मान लिया। साथियों ने किसी पेड़ के एक पत्ते पर निशाना लगाने को कहा। आजाद ने निशाना लगाया और पाँच गोलियाँ चला दीं, किन्तु पत्ता नहीं गिरा। साथियों को बड़ी निराशा हुई और उन्होंने समझ लिया कि निशाना चूक गया। अन्त में पत्ता तोड़ा गया; उसमें पाँचों गोलियों को अलग-अलग पाँच छिद्र बने हुए थे। यह देखकर उनके साथी उनकी प्रशंसा किए

शिक्षा देने के लिए किसी पाठशाला में भेजने में भी असमर्थ थे। दल के सन्दर्भ में उनकी इसी निर्धन पारिवारिक स्थिति का वर्णन करते हुए भगवानदास ने लिखा है—

"आजाद के साथियों यानी उनके नेतृत्व में काम करने वालों में शायद ही किसी को उनसे कम स्कूली शिक्षा मिली होगी। शायद ही कोई उनसे अधिक गरीबी की हालत में उत्पन्न हुआ होगा। उनके साथ उनके पिता, भाई या किसी अन्य सम्बन्धी की देशभक्ति, त्याग, तपस्या, वीरता या अन्य किसी प्रकार के बड़प्पन की छाया भी नहीं लगी हुई थी।"

इसी विषय में श्री मन्मथनाथ गुप्त ने भी लिखा है—

"इनके पिता पं० सीताराम बहुत मामूली नौकरी करते थे, इसलिए अंग्रेजी पढ़ने का कोई प्रश्न ही नहीं उठा। आज़ाद संस्कृत पढ़ने के लिए काशी भेजे गए ···ब्राह्मण विद्यार्थी थे इस कारण खाने-पीने तथा रहने की मामूली व्यवस्था हो गई। काशी में धार्मिक लोगों की ओर से संस्कृत छात्रों के लिए छात्र निवास तथा क्षेत्र खुले हुए थे। कभी-कभी लोटा-कम्बल ऐसी चीजें भी बँटती रहती थी। कभी-कभी कुछ दक्षिणा भी मिलती थी।"

इन विद्वानों की उपर्युक्त पंक्तियों से आजाद के परिवार की तथा उन परिस्थितियों की, जिनका सामना उन्हें अपने बाल्यकाल में तथा अध्ययन के दिनों में करना पड़ा था, स्पष्ट अभिव्यक्ति हो जाती है। किन्तु आजाद ने सिद्ध कर दिखाया कि इस प्रकार की स्कूली शिक्षा ही सब कुछ नहीं है। व्यक्ति की पारिवारिक स्थिति चाहे कितनी ही दयनीय क्यों न हो और चाहे उसे वहाँ की शिक्षा न मिली हो, इससे उसकी अपनी असाधारण योग्यता छिपी नहीं रह सकती। इसके न होने पर भी व्यक्ति अपनी योग्यता के बल पर उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच सकता है, एक आदर्श प्रस्तुत कर सकता है, जिसके आगे बड़े-बड़े धनवानों एवं सुशिक्षितों को नतमस्तक हो जाना पड़ता है। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए श्री मन्मथनाथ गुप्त ने आजाद के विषय में लिखा है—

"अवश्य चन्द्रशेखर आजाद कम पढ़े-लिखे, केवल स्कूल कालेज की दृष्टि से ही थे, पर उनमें पढ़ी हुई पुस्तकों का सार ग्रहण करने की बड़ी

सामने श्रद्धा से झुक जाते थे। आज़ाद वास्तव में गुदड़ी के लाल थे, ऐसे लाल, जिन्होंने अपने आलोक से दुनिया को एक नया प्रकाश दिखाया।

## चरित्र-बल के प्रतीक

आज़ाद एक सच्चे देशभक्त थे। उनके लिए मातृभूमि की स्वतन्त्रता ही एकमात्र लक्ष्य बन गई थी। अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने जीवन के सभी सुखों एवं भोगों का परित्याग कर दिया था। वह संस्कृत के विद्यार्थी रह चुके थे, फलतः उन्होंने गीता का भी अध्ययन किया होगा। इसलिए उन्होंने कदाचित् गीता से यह शिक्षा ग्रहण की थी कि 'विषय-वासनाओं के ध्यान से आसक्ति, आसक्ति से काम, काम से क्रोध, क्रोध से अज्ञान, अज्ञान से स्मृति विभ्रम, स्मृति विभ्रम से बुद्धिनाश तथा बुद्धिनाश से सर्वस्व पतन निश्चित होता है', अर्थात् किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विषयों से दूर रहना नितान्त आवश्यक है। इसीलिए आज़ाद के जीवन में एक प्रशंसनीय चरित्र-बल के दर्शन होते हैं। उनका चरित्र एक आदर्श है। वह प्रत्येक स्त्री में अपनी माँ के दर्शन करते थे। इस विषय में उनके दल के कुछ अन्य सहयोगियों के विचार उनसे कुछ भिन्न थे। कुछ साथी स्त्रियों के प्रेम के चक्कर में दल को हानि पहुँचा चुके थे। इसलिए आज़ाद अपने साथियों को इन सब से दूर ही रहने की सलाह देते थे। उनकी इस आदर्श सच्चरित्रता के विषय में श्री वीरेन्द्र ने लिखा है—

"चन्द्रशेखर आज़ाद के जीवन का सबसे उज्ज्वल पक्ष था महिलाओं के विषय में उनका रवैया। वह सदा उनसे दूर रहते थे। उनका अपना शरीर बहुत सुन्दर था। निरन्तर कई वर्ष परिश्रम एवं व्यायाम करके उन्होंने उसे तराशा था। इसलिए एक दो बार कुछ ऐसी घटनाएँ भी हो गईं कि कुछ औरतों ने उन्हें अपने जाल में फँसाने का प्रयत्न किया। किन्तु वह हमेशा यही कहा करते थे कि एक क्रान्तिकारी एक ही समय में दो चीज़ों से प्रेम नहीं कर सकता। वह अपने दल से प्रेम करे या किसी युवती से। [illegible] करता है तो उसके लिए उसे कुछ बलिदान करना पड़ेगा। [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] है। उसके [illegible] [illegible]

कि वह जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे तथा सच्चरित्रता एवं नारी-सम्मान के वह प्रबल समर्थक थे। आज़ाद में हुए इन परिवर्तनों का उल्लेख श्री भगवानदास ने निम्नलिखित शब्दों में किया है—

"हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि मध्यभारत की एक छोटी-सी रियासत अलीराजपुर के एक गांव में एक कट्टर ब्राह्मण के घर आज़ाद का जन्म हुआ था, जिसे यदि जात-पाँत, छुआछूत और नारी के प्रति तेरहवीं सदी की मनोवृत्ति वाला कहा जाए, तो अनुचित नहीं होगा और फिर इस वातावरण से प्रगति करते-करते वह बीसवीं सदी के तृतीय दशक के भारतीय क्रान्तिकारियों की अग्र पंक्ति के नेता बने। दस-बारह वर्ष की आयु में कट्टर ब्राह्मण के रूप में संस्कृत पढ़ने के लिए घर से भागकर काशी पहुँचे। वह राष्ट्रीय लहर में रंगे, सत्याग्रह किया, बेंतों की सजा पाई और क्रान्तिकारियों में शामिल हुए। अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में उनके विचारों में आर्यसमाजीपन आया और छुआछूत, मूर्ति पूजा आदि को वह निःसार समझने लगे। बाद में भगतसिंह आदि के सम्पर्क से धीरे-धीरे उन्होंने समाजवादोन्मुख धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाया और भारतीय समाजवादी प्रजातन्त्र सेना के प्रधान सेनानी हुए। निश्चय ही एक कट्टर ब्राह्मणवादी बालक से अग्रपंक्ति के क्रान्तिकारी प्रगतिशील नौजवान नेता के विकास की प्रगति के अनेक स्तर बहुत थोड़े समय में आज़ाद ने पार किए। स्त्रियों के सम्बन्ध में आज़ाद अपने व्यक्तिगत जीवन में तो सदा एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही रहे। पहले वह दल में स्त्रियों के प्रवेश के विरुद्ध ही थे और इसलिए थे कि उनके नेतृत्व के पूर्व यही परम्परा थी, परन्तु बाद में उनके ही नेतृत्व में स्त्रियों ने दल में काम किया और खूब अच्छी तरह किया। "नारी नरक की खान" वाली मनोवृत्ति से नारी को एक सक्रिय क्रान्तिकारिणी, समान सहयोगिनी के रूप में मानने के बीच की सभी मनोदशाएँ आज़ाद में समय-समय पर रही होंगी, यह स्पष्ट है। अन्तिम दिनों में आज़ाद बड़े उत्साह से दल की सभी स्त्री सदस्याओं को गोली चलाना, निशाना मारना आदि सिखाते थे। दल से सहानुभूति रखने वाले व्यक्तियों के घर की स्त्रियों को भी वह उनके लिए उत्साहित करते थे। तथा क्रान्तिकारी कार्यों में आगे रहने का सक्रिय सहयोग करते

के लिए उन्हें बार-बार तरह-तरह की प्रेरणा देते थे। स्त्रियों से उनका व्यवहार बड़ा सरल और आत्मीयतापूर्ण होता था। यह सब होते हुए भी इस बात के घोर शत्रु थे कि कोई दल का सदस्य स्त्रियों के प्रति अनुचित रूप से आकृष्ट हो, किसी प्रकार की यौन कमज़ोरी तो उनके लिए असह्य थी। परन्तु पति-पत्नी दोनों क्रान्तिकारी कार्यों में लगे, इससे अधिक अभीष्ट बात उनके लिए और कोई नहीं थी।"

यही नहीं भगतसिंह के प्रगतिशील विचारों से प्रभावित होकर उनके खान पान में भी परिवर्तन आ गया था। पारिवारिक संस्कारों से विशुद्ध शाकाहारी ब्राह्मण होने पर भी अब वह अण्डे का सेवन करने लगे थे। इस विषय में तो श्री भगवानदास ने उनके जीवन की एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है—

"खान-पान के सम्बन्ध में भी आज़ाद अपने व्यक्तिगत संस्कारों से एक शाकाहारी ब्राह्मण ही थे। उनका छुआछूत का भूत पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में काम करने के समय ही उतर गया था। एच० एस० आर० ए० सेना के रूप में वह मांस आदि खाने के विरुद्ध तर्क विशेष नहीं करते थे, मगर वह उन्हें अच्छा नहीं लगता था। शिकार वह खूब खेलते थे, मगर स्वयं मांस नहीं खाते थे। राजा साहब खनियाधाना के यहाँ मैं तो शिकार भी करता था, और खुल्लमखुल्ला मांस भी खाता था, इस पर वह मुझसे कुछ नाराज़ भी हुए थे। भगतसिंह उन्हें खत्रियों और क्षत्रियों जैसे काम करने वालों के लिए मांस खाने की अभीष्टता, उपयोगिता और नैतिकता पर लेक्चर झाड़कर अक्सर चिढ़ाया करते थे। सान्डर्स वध के समय जब आज़ाद ने मुझे लाहौर बुलाया तो मुझे यह देखकर विस्मय हुआ कि आज़ाद पर भगतसिंह का जादू चल गया और पण्डितजी अब कच्चा अण्डा सीधा मुँह पर तोड़कर ही गटक रहे हैं। मैंने हैरानी से पूछा—"पण्डितजी! यह क्या?" आज़ाद बोले—"इसमें कोई हर्ज नहीं है, वैज्ञानिकों ने इसे फल जैसा ही बताया है।" यह तर्क भगतसिंह का ही था, जिसे आज़ाद दुहरा रहे थे।"

उपर्युक्त वृत्तान्तों से स्पष्ट है कि क्रान्तिकारी रूप में आज़ाद के वि[illegible]
पे अपने साथियों के विचारों का प्रभाव पड़ा। यद्यपि वह एक बहुत [illegible]

थे, फिर आर्यसमाज से प्रभावित हुए और अन्त में वह समाजवाद की ओर उन्मुख हुए। उन्होंने पारिवारिक तथा वातावरण से प्राप्त रूढ़ियों से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया, जो उनकी निरन्तर प्रगतिशीलता का सूचक है, किन्तु उनकी यह प्रगतिशीलता सर्वनाशक थी। प्रगतिशीलता के नाम पर पश्चिम का अन्धानुकरण उन्होंने कभी नहीं किया; भारतीयता एवं संस्कृति के अन्य उज्ज्वल पक्षों को उन्होंने अपने से कभी भिन्न नहीं होने दिया। उनके जीवन की विभिन्न घटनाएँ इसका स्पष्ट प्रमाण हैं। उनकी यह प्रगतिशीलता भारतीय संस्कृति के उदात्त मूल्यों को भी अपने साथ लेकर चली थी। इस प्रकार वह सामयिक अपेक्षाओं के अनुरूप कल्याणकारी प्रगतिशीलता के समर्थक थे। उनके जीवन में उदार परम्पराओं तथा देशहित के अनुरूप प्रगतिशीलता का एक अद्भुत समन्वय परिलक्षित होता है।

## आदर्श नेतृत्व :

अपना क्रान्तिकारी जीवन आज़ाद ने श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल के नेतृत्व में प्रारम्भ किया था। काकोरी काण्ड के बाद यह क्रान्तिकारी दल छिन्न-भिन्न हो गया था। उन्होंने नए सिरे से क्रान्तिकारी दल का संगठन करने का प्रयत्न किया और संयोग से उन्हें राजगुरु, भगतसिंह आदि जैसे साथी मिले। सबने मिलकर 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक सेना' बनाई। सभी साथी आज़ाद की योग्यता से प्रभावित थे, अतः उन्हें ही इस नये दल का नेता—कमाण्डर-इन-चीफ—बनाया गया। दल के नेता के रूप में उनका उत्तरदायित्व और भी बढ़ गया। इस पद की गरिमा को आज़ाद ने बनाए रखा।

सर्वप्रथम दल के नेता को स्वयं को अनुशासित रखना पड़ता है। इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर आज़ाद ने अपने आचरण एवं अनुशासन को सदा बनाए रखा, जिसके माध्यम से उन्होंने दल के सदस्यों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया। वह दल की छोटी-छोटी बातों पर भी बड़ी सावधानी से ध्यान देते, क्योंकि इन छोटी-छोटी बातों की उपेक्षा करने पर आगे चलकर समय में बढ़कर समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है

"आज़ाद के साथियों यानी उनके नेतृत्व में काम करने वालों में शायद ही किसी को उनसे कम स्कूली शिक्षा मिली होगी। शायद ही कोई उनसे अधिक गरीबी की हालत में उत्पन्न हुआ होगा। उनके साथ उनके पिता, भाई या अन्य किसी सम्बन्धी की देशभक्ति, त्याग और तपस्या या अन्य किसी प्रकार के बड़प्पन की छाया भी नहीं लगी हुई थी। अमर शहीद भगतसिंह आदि अपने साथियों से उन्होंने नेता का पद पुस्तकीय ज्ञान पर आधारित थोथे सशोधन पर ही नहीं, व्यावहारिक सूझ-बूझ, उत्कट साहस और सर्वोपरि अपने साथियों की सुख-सुविधा की हार्दिक स्नेहपूर्ण चिन्ता खतरे और संकट समय में कुशल नेतृत्व प्रदान करके ही पाया। अपने साथियों और सम्पर्क में आने वालों के जीवन में केवल एक राजनीतिक मूल्य के रूप में ही नहीं, एक व्यक्तिगत मानमूल्य के रूप में घर कर लेने के अपने गुण विशेष में ही आज़ाद की सफलता निहित थी। उनके अकृत्रिम स्नेहपूर्ण व्यक्तिगत व्यवहार ने ही उन्हें साथियों का प्रिय नेता बना दिया और उनके हृदय में अपने लिए ऐसा विश्वास उत्पन्न कर दिया कि वे उनके संकेत मात्र पर प्राण देने के लिए तैयार रहा करते थे। दल में आज़ाद के नेतृत्व को स्वीकार करने के सम्बन्ध में कभी कोई झंझट या झगड़ा नहीं हुआ। यह बात आज़ाद की प्रशंसा की तो है ही साथ ही उन साथियों की सच्चाई, लगन, निरभिमानता को भी यह भली-भाँति व्यक्त करती है, जो विद्या, बुद्धि, त्याग और बलिदान कर सकने की अपनी तत्परता में किसी प्रकार भी कम न थे।'

वस्तुतः आज़ाद के ही कुशल नेतृत्व का यह परिणाम था कि दल के अन्य सभी सदस्य उनसे अधिक शिक्षित एवं अपने घरों से अच्छी आर्थिक स्थिति वाले होने पर भी दल में एकता के सूत्र में बँधे हुए थे।

वन में शेर का कोई भी संस्कार या राज्याभिषेक नहीं किया जाता फिर भी वह अपने स्वयं के विक्रम से वन का राजा बन जाता है और मृगेन्द्र कहा जाता है, इसी प्रकार घर-परिवार अथवा अन्य किसी प्रकार की पृष्ठभूमि न होने पर आज़ाद अपनी वीरता के बल पर क्रान्तिकारियों के दल के नेता बने और क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास में उन्होंने एक सर्वथा नवीन अध्याय की रचना की।

जो जब वह माँ से मिलने गए थे और सोए हुए थे, तो पुलिस पहुँच गई थी। इस बार पुलिस का सामना गोलियों से किया गया। गोलियाँ समाप्त हो जाने पर वह अपने मित्र के साथ छत पर चले गए और छत पर रखी ईंटों से पुलिस को गोलियों का सामना करने लगे। उनका साथी मारा गया, किन्तु आज़ाद स्वयं एक से दूसरी छत पर कूदते हुए पुलिस के चक्रव्यूह से बाहर निकल गए।

काकोरी काण्ड के बाद उनके विरुद्ध प्रमाण जुटाने के लिए एक पुलिस अधिकारी विशेष रूप से लगाया गया था। वह सदा उनका पीछा किया करता था। आज़ाद उनसे तंग आ गए। तब एक दिन वह किसी बात की परवाह किए बिना सीधे उसके पास जा धमके और उसके सीने से रिवाल्वर सटा दिया। उनके इस साहस को देखकर पुलिस अधिकारी के हाथों के तोते उड़ गए, उसने फिर उनका पीछा न करने की कसमें ली और तब आज़ाद ने उसे छोड़ दिया।

कई बार वह वेष बदलकर पुलिस एवं गुप्तचरों के जाल से निकले। भगतसिंह की गिरफ्तारी के बाद उन्हें जेल से छुड़ाने की योजना भी उन्होंने बनाई थी, जो दुर्भाग्य से सफल न हो सकी और 1929 में वाइसराय की गाड़ी को बम से उड़ाने का प्रयत्न किया था, जो सफल न हो सका।

सम्पूर्ण प्रकार आज़ाद का पूरा जीवन ही साहसिक कार्यों से भरा हुआ था और अन्त में साहस के साथ पुलिस का सामना करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। उनमें साहस की भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी। वस्तुतः वह वास्तविक आज़ाद थे, मृत्यु का भय तो उन्हें छू भी नहीं गया था। वह सदा मृत्यु का सामना करने को तत्पर रहते थे। उनका यही कहना था कि वह शत्रु की गोलियों का सामना करने को तैयार रहते थे, वह आज़ाद थे, आज़ादी न रहने पर विकल्प में मृत्यु ही उन्हें अभीष्ट थी। उनके इस अदम्य साहस की ओर संकेत करते हुए मन्मथनाथ गुप्त लिखते हैं—

"...वो गत दस वर्षों से साम्राज्यवाद अथक युद्ध, अजीब-अजीब परिस्थितियों में भी, कहना चाहिए बिल्कुल प्रतिकूल परिस्थितियों में— करते आ रहे थे। इन आठ सालों से उन्होंने क्रान्ति का भार अपना स्वर

ध्यान रखना।"

इन मर्मस्पर्शी शब्दों में आजाद का एक नया रूप—एक भावुक मित्र का रूप—हमारे सामने आता है। वास्तव में दुनियादारी का निर्वाह करने के लिए महान आत्माएँ चाहे बाहर से वज्र के समान कठोर क्यों न लगें, किन्तु उनका हृदय फूल से भी कोमल होता है। यही उक्ति हमारे चरित्र-नायक चन्द्रशेखर आजाद पर भी चरितार्थ होती है।

उनके मित्र-प्रेम की एक ऐसी ही घटना का उल्लेख श्री वीरेन्द्र ने किया है। यह घटना असेम्बली में बम विस्फोट के एक-दो दिन बाद की है। इसके बाद समाचार-पत्रों में भगतसिंह का चित्र छपा था, जिसे देखकर आजाद का मित्र-प्रेम आँखों से बह निकला था। श्री वीरेन्द्र के ही शब्दों में—

"भगतसिंह के लिए आजाद के मन में कितना प्रेम था इसका अनुमान एक और घटना से लगाया जा सकता है। जिस दिन भगतसिंह ने असेम्बली में बम फेंका था आजाद उस दिन आगरा में थे। जब उन्होंने समाचार-पत्रों में भगतसिंह का चित्र देखा तो उसे सामने रखकर देर तक उसकी ओर देखते रहे और फिर उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। यह पहला अवसर था जब किसी ने उनकी आँखों में आँसू देखे। परन्तु आजाद अनुभव करते थे कि भगतसिंह ने भारी बलिदान किया है। अब वह वापस नहीं आयेगा और आजाद की और उसकी मुलाकात शायद इस जीवन में न हो सके। इस विचार ने उन्हें कुछ परेशान कर दिया और वह व्यक्ति जिसके सम्बन्ध में यह समझा जाता था कि उसका दिल पत्थर का है, अन्ततः पिघल गया। परन्तु यह कोई दुर्बलता नहीं

आज़ाद भी एक वृक्ष की ओट में हो गए। दोनों ओर से गोलियाँ चलने लगीं। इतने में आज़ाद ने मुझे आदेश दिया कि मैं वहाँ से भाग जाऊँ। वह स्वयं लड़ते-लड़ते वहीं शहीद हो गए। किन्तु उन्होंने अपने एक साथी की जान बचा ली।"

स्वयं मिटकर भी मित्र की प्राणरक्षा करने का यह उदाहरण निश्चय ही अपने-आपमें एक आदर्श है, जिसकी सामान्य व्यक्तियों से आशा करना केवल कल्पना ही होगी।

पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल तथा भगतसिंह को जेलों से मुक्त कराने के प्रयास भी उनके मित्र-प्रेम के ही परिचायक हैं। इस प्रकार चन्द्रशेखर आज़ाद जहाँ एक ओर एक अद्वितीय क्रान्तिकारी, अदम्य साहसी, श्रेष्ठ नेतृत्व-शक्ति से युक्त, चरित्रबल के प्रतीक तथा प्रगतिशील विचारों वाले राजनीतिक चिन्तक हैं, वहीं दूसरी ओर वह एक आदर्श मित्र के रूप में हमारे सामने आते हैं।

देश-प्रेम के पर्याय :

असहयोग आन्दोलन की समाप्ति पर वह क्रान्तिकारी संगठन 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' के सदस्य बन गए। यहीं से उनके हृदय में अंकुरित देश-प्रेम के नन्हे पौधे को पल्लवित होकर विशाल वृक्ष बनने का अवसर प्राप्त हुआ।

अब उनके सामने एक ही लक्ष्य था, देश को विदेशियों के बन्धन से मुक्त कराना। उन्होंने जो भी कार्य किया—चाहे वह डकैती हो, ठगी हो, हिंसा हो या क्रान्तिकारी दलों का संगठन हो सब कुछ अपने इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर किया। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने जीवन के सभी सुखों को तिलाञ्जलि दे दी और दुःखों का आलिंगन किया। अपने इस लक्ष्य को प्राप्त करने के मार्ग में वह संसार के अन्य सुखों को बाधक समझते थे। इसीलिए वह अपने अन्य साथियों को भी इनसे दूर रहने का परामर्श देते थे। उनका स्पष्ट उद्घोष था—

"देश से प्रेम करना है, तो इसके लिए सब कुछ बलिदान करना पड़ेगा। इसमें किसी दूसरे से प्रेम करने के लिए तनिक भी स्थान नहीं है।"

देश-प्रेम के लिए सर्वस्व बलिदान करने का यह उद्घोष उनके जीवन का सैद्धान्तिक पहलू मात्र नहीं था, अपितु, उनके जीवन का क्रिया—व्यवहार था। उदाहरणस्वरूप उनके जीवन की एक घटना को लिया जा सकता है। श्री गणेशशंकर विद्यार्थीजी ने उन्हें दो सौ रुपये दिये थे, त वह इस पैसे को अपने माता-पिता के लिए भिजवा दें, क्योंकि उन हालत इतनी दयनीय हो गई थी कि भूखों मर रहे थे। किन्तु आज़ाद वह रुपया दल के सदस्यों पर खर्च कर दिया। "क्या वह पैसा तुमने अ घर भिजवा दिया ?" विद्यार्थी जी द्वारा पूछे जाने पर आज़ाद ने उ दिया—

"मेरे माता-पिता को तो फिर भी कभी-न-कभी कुछ खाने को मि जाता है, किन्तु मेरी पार्टी के कई ऐसे युवक हैं, जिन्हें कई बार बिल्कुल ह भूखे रहना पड़ता है। मेरे माता-पिता वृद्ध हैं। मर भी गए तो देश क कोई हानि नहीं होगी किन्तु मेरी पार्टी का कोई युवक भूख से तड़पकर मर —तो यह हमारे लिए बहुत शर्म की बात होगी और देश को इससे